केरल ज्योति

जनवरी 2025

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

श्रीनारायणगुरु मुक्त विश्वविद्यालय एवं केरल हिन्दी प्रचार सभा के संयुक्त तत्त्वावधान में अकादेमिक पाठ्यक्रम एवं तत्संबंधी कक्षाएँ चलाने के उपलक्ष्य में प्रस्तुत अनुबंध पत्र पर केरल के आदरणीय मंत्री, उच्च सिक्षा विभाग, केरल सरकार के महती सान्निध्य में हस्ताक्षर का दृश्य।

केरल हिंदी प्रचार सभा

ISO 9001: 2015

भाषा सम्मेलन का उद्घाटन सेवानिवृत्त डी.जी.पी. श्रीमती श्रीलेखा आई पी एस कर रही हैं।

श्रीमती सुजाता द्वारा अनूदित पुस्तक 'खेमा नाँव खेचरी आँखें' का प्रकाशन केरल हिंदी प्रचार सभा के मंत्री अधिवक्ता डॉ.मधु वी वरिष्ठ साहित्यकार डॉ.के.सी.अजयकुमार को देकर प्रकाशित कर रहे हैं। वरिष्ठ अनुवादक प्रो.डी.तंकप्पन नायर का भी सान्निध्य है।

आदर्श विद्यालय के वार्षिक समारोह के संदर्भ में पूर्व डी.जी.पी. श्री ऋषिराज सिंह आई ए एस, सब कलेक्टर आल्फ्रड ओ.वी. आई ए एस को सम्मानित कर रहे हैं।

केरलज्योति
केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका
(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक
स्व. के वासुदेवन पिल्लै
पूर्व समीक्षा समिति
प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर
परामर्श मंडल
डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे
प्रबन्ध संपादक
गोपकुमार एस (अध्यक्ष)
मुख्य संपादक
प्रो डी तंकप्पन नायर
संपादक
डॉ. रंजीत रविशैलम
संपादकीय मंडल
अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 61 दल : 10 अंक: **जनवरी 2025**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

पुल एक छायादार स्थान (कविता) **डॉ सी वी आनंदबोस** 6

विश्व हिंदी दिवस 7

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य - **प्रो.डी.तंकप्पन नायर** 8

किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया का प्रभाव
डॉ राजू सी पी 13

जीवन कौशल शिक्षा की आवश्यकता और इंग्लिश विंग्लिश चलचित्र में जीवन कौशल प्रस्तुति - **डॉ रिंकू भाटिया / दीपेश परमार** 17

“शब्द पखेरू” में व्यक्त उत्तराधुनिक जीवन त्रासदी-**डॉ गायत्री एन** 19

अनामिका के उपन्यास ‘तिनका तिनके पास’ में अभिव्यक्त वेश्या जीवन
डॉ हेलन मेरी ए जे 21

समकालीन उपन्यास : बदलते जीवन परिदृश्य
Lt.डॉ शबाना हबीब 24

“अपने अपने पिंजरे” में अभिव्यक्त दलित जीवन का यथार्थ
डॉ राजन टी के 28

अल्पना मिश्र की कहानी ‘उनकी व्यस्तता’ में नारी जीवन यथार्थ
श्यामलतिका एस 31

मलयालम फ़िल्मी गीत शाखा में पट्टम सनित्त का योगदान-**डॉ बिनु डी** 33

“साहित्य में दलित चेतना : सुशीला टाकभौरे का योगदान”-**ऋचा जांगड़े** 35

जयप्रकाश कर्दम और एस जोसफ की कविताओं में जातीयता
डॉ राधिका आर 38

दलित स्त्रीवाद- **डॉ.अनुपमा पी ए** 42

देवयानम् (आत्मकथा)
मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना 46

थमती नहीं नदी (कविता) **सुबोध श्रीवास्तव** 47

ज़िंदगी : एक लोलक (आत्मकथा)
मूल : श्रीकुमारन तंपी अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार 48

प्रश्नोत्तरी - **डॉ.रंजीत रविशैलम** 50

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 40/- ***आजीवन चंदा : रु. 4000/-*** ***वार्षिक चंदा : रु. 400/-***

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : संपादक : 7898515222

E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
जनवरी 2025

संपादकीय

श्रीनारायणगुरु मुक्त विश्वविद्यालय और केरल हिंदी प्रचार सभा का नया गठबंधन

14 सितंबर सन् 1949 को ही भारत सरकार के प्रथम राष्ट्रपति एवं भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ राजेंद्रप्रसाद ने अपने भाषण में कहा कि "पहली बार अपने संविधान में एक भाषा स्वीकार कर रहे हैं जो भारत संघ के प्रशासन की भाषा होगी, जो राजभाषा हिंदी देश की एकता को कश्मीर से कन्याकुमारी तक अधिक सुदृढ़ कर सकेगी।" उसके पूर्व पंद्रह साल के पहले महात्मा गाँधीजी के आदर्शों एवं विचारधारा से प्रेरणा प्राप्त स्व. के वासुदेवन पिल्लै जी ने सन् 1934 में तिरुवितांकूर हिंदी प्रचार सभा की स्थापना की जो आगे चलकर 1961 से केरल हिंदी प्रचार सभा नाम से अभिहित होने लगी। सभा द्वारा संचालित हिंदी प्रवेश, हिंदी भूषण और साहित्याचार्य परीक्षाओं को क्रमशः मेट्रिक, इन्टर और बी.ए. (हिंदी पार्ट) के तुल्य परीक्षाओं के रूप में मान्यता प्रदत्त है। इसके अलावा केरल एवं श्रीनारायण गुरु मुक्त विश्वविद्यालय तथा हिंदी साहित्य सम्मेलन, अलाहाबाद से उच्च परीक्षा के लिए प्रवेश पाने को स्वीकृति दी गई है।

केरल के शैक्षिक क्षेत्र में 2 अक्तूबर 2020 को श्रीनारायणगुरु मुक्त विश्वविद्यालय (SGOU) की स्थापना कोल्लम में आयोजित एक भव्य समारोह में हुआ। समारोह का उद्घाटन किया था केरल के मुख्य मंत्री माननीय पिणरायी विजयन ने। इस विश्वविद्यालय की स्थापना भारत में आध्यात्मिक क्रांति के अग्रदूत, सच्ची मानवता के महान संदेशवाहक एवं श्रेष्ठ समाजोद्धारक श्रीनारायण गुरु की पावन स्मृति में हुई। श्रीनारायण गुरु मुक्त विश्वविद्यालय का मुख्यालय केरल में कोल्लम जिले में कुरीप्पुझा (Kureepuzha) नामक जगह में है। स्थायी रूप से राज्य का राज्यपाल होंगे विश्वविद्यालय के कुलाधिपति (Chancellor) और श्री पी एम मुबारक पाषा प्रथम कुलपति (Vice-Chancellor) के रूप में एवं श्री एस वी सुधीर प्रथम सम-कुलपति (Pro- Vice-Chancellor) के रूप में नियुक्त हुए। अपने सेवाकाल में सर्वश्री मुबारक पाषा और सुधीर ने विश्वविद्यालय के विकास एवं उन्नति तथा उसको एक नया आयाम प्रदान करने में प्रशंसनीय कार्य किया है जो आगे के पदाधिकारियों के लिए एक उज्ज्वल आदर्श स्वरूप है। यह भी ध्यातव्य है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने (University Grants Commission) ने 2021 में श्रीनारायणगुरु मुक्त विश्वविद्यालय को मान्यता प्रदान की है।

संप्रति प्रो (डॉ) जगतिराज वी पी श्रीनारायणगुरु मुक्त विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में सेवारत हैं और जब से उन्होंने अपना कार्यभार संभाला तब से कहने को है विश्वविद्यालय को अपनी समुन्नति की संप्राप्ति का सच्चा वृत्तांत। भारत भर में प्रतिष्ठा प्राप्त केरल हिंदी प्रचार सभा को सहयोग देने में और सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करने में उनका बहुमूल्य योगदान है। इसका ज्वलंत उदाहरण है

हाल ही में दोनों संस्थाओं के बीच हस्ताक्षरित समझौता ज्ञापन (MOU)। केरल सरकार के सचिवालय के सम्मेलन हॉल में उच्च शिक्षा मंत्री श्रीमती आर बिंदु, श्रीनारायणगुरु मुक्तविश्वविद्यालय के कुलपति प्रो डॉ जगतिराज आदि की उपस्थिति में तैयार समझौता ज्ञापन में केरल हिंदी प्रचार सभा के मंत्री अधिवक्ता मधु बी और मुक्त विश्वविद्यालय के कुलसचिव डॉ ए पी सुनिता ने समझौते पर हस्ताक्षर करके समझौतों को हस्तांतरित किया। उस समय मुक्त विश्वविद्यालय के साइबर विभाग के अधिकारी डॉ ए जयमोहन, सभा के अध्यक्ष एस गोपकुमार, आचार्या (बी.एड) कॉलेज के प्रिंसिपल डॉ मधुबाला जयचंद्रन और पी जी सेंटर के प्रिंसिपल डॉ पी जे शिवकुमार आदि उपस्थित थे।

उक्त समझौते के अनुसार केरल हिंदी प्रचार सभा द्वारा संचालित पी जी डिप्लोमा इन ट्रांस्लेशन, ऑफिस करस्पोण्डेन्स & जेर्णलिसम कोर्स केरल हिंदी प्रचार सभा और मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा संयुक्त रूप से चलाया जायेगा। वर्तमान समय में केरल के विश्वविद्यालय सभा की साहित्याचार्य परीक्षा को III पार्ट के रूप में मान्यता देकर पार्ट I & II में भी उत्तीर्ण होने पर डिग्री देते आ रहे हैं। वैसे ही मुक्त विश्वविद्यालय साहित्याचार्य को मान्यता देकर डिग्री सर्टिफ़िकेट प्रदान किये जायेंगे। सभा के मुख्यालय को तथा जिला केंद्रों को श्रीनारायणगुरु मुक्त विश्वविद्यालय के प्रशिक्षण केंद्र बनाने और परीक्षाओं के मूल्यनिर्णय केंद्र बनाने के लिए भी समझौते में प्रावधान है।

प्रस्तुत समझौता श्रीनारायण गुरु मुक्त विश्वविद्यालय एवं केरल हिंदी प्रचार सभा के लिए ऐतिहासिक महत्व रखता है। इससे दोनों संस्थाओं का सौहार्द एवं दीर्घदर्शिता और सर्वोपरि राष्ट्रीय एकता की भावना का उज्ज्वल परिचय देता है।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
डॉ.रंजीत रविशैलम

कविता

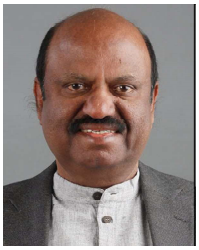

पुल एक छायादार स्थान

डॉ सी वी आनंदबोस

आदिवासी को आज चाहिए क्या विकास
बोले सब दो एक पुल जंगल को
देश से अलग करती सरिता को
पार करने को और बनाया एक पुल भी।

उस दिन पुल को खोल देने को पहुँचे
लपककर मंत्रीश्वर और उनके भूतगण
समाचार के गंदे कपड़े धोते वीरों ने
देखा इन लोगों ने उपेक्षा की है मुखिया को।

ढूँढकर लाये गये मुखिया को
और पूछा उनसे कि बतावें क्या
फ़ायदा है आदिवासियों को इस पुल से
कहें मुखिया दिल खोलकर अपना।

मुखिया बोले यों सरल मन से
कि इस पुल के बनने के पूर्व कड़ी
धूप में उस पार जाने वाले जाते थे तैर कर
आगे इस छाँव में जा सकेंगे तैरकर।

अनुवाद : प्रो डी तंकप्पन नायर
डॉ रंजीत रविशैलम

विश्व हिंदी दिवस

पहले संपूर्ण भारत में हिंदी प्रेमियों द्वारा 1949 सितंबर 14 को राजभाषा दिवस के रूप में मनाया जाता था और आज भी ऐसा ही हो रहा है। जब से 10 जनवरी 1975 को नागपूर में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन हुआ था तब से प्रतिवर्ष 10 जनवरी को विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। नागपूर के बाद विश्व के विभिन्न भागों के अलावा भारत में नई दिल्ली, भोपाल आदि प्रदेशों में भी विश्व हिंदी दिवस के सम्मेलन आयोजित हुए। भारत के अलावा अनेक विदेश राष्ट्रों में भी हिंदी भाषा का गौरवान्वित इतिहास है। जिन राष्ट्रों में भारतीय मूल वंश के लोग रहते है उन में भारतीय भाषाओं में से हिंदी का व्यवहार गौरव से होता रहा। प्रवासी भारतीयों ने भारतीय साहित्य और संस्कृति का प्रचार करने में उत्साह प्रकट किया है। श्री रामचरितमानस इनमें से कई लोगों की नित्य पारायण की रचना बन गई। कहने का मतलब यह है कि हिंदी की व्यापकता और प्रसार विश्व हिंदी दिवस मनाने की स्थिति पहुँच गया। भारत की समृद्ध साहित्यिक और सांस्कृतिक जो परंपरा है उसकी महिमा एवं गरिमा की अभिवद्धि के लिए विश्व हिंदी दिवस के सम्मेलनों में महत्व मिलता है। हिंदी प्रेम की भाषा है और सारी दुनिया को अपने सीने से लगाती है। यों हिंदी विश्व बंधुत्व की भावना का झंडा ऊँचा उडाती है। इसी भावना को लेकर हर साल जनवरी 10 को केरल हिंदी प्रचार सभा विश्व हिंदी दिवस मनाती है। इस संदर्भ में केरलज्योति परिवार गर्व का अनुभव करता है, इसलिए कि वर्ष 2023 में फिजी में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में केरल हिंदी प्रचार सभा के कर्णधार अधिवक्ता (डॉ) मधु.बी को सभा को प्रदत्त विश्व हिंदी सम्मान ग्रहण करने का अवसर मिला था। चालू वर्ष में विश्व हिंदी दिवस के इस अवसर पर केरल के, भारत के एवं संपूर्ण जगत के हिंदी प्रेमियों को केरल हिंदी प्रचार सभा का अभिवादन!

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

पन्द्रहवाँ सर्ग

केरल का आर्यकरण

1. इतिहास के एक दौर में रहे थे दक्षिण भारत में खासकर
केरल में प्रचलित व्यापक रूप में बौद्ध और जैन धर्म और
कालांतर में उनके विहारों की जगह जब हुई स्थापना मंदिरों की
तब से बढ गयी ब्राह्मणों की प्रभुता और बने वे एक प्रबल समूह।

2. विचार है इतिहासकारों का कि केरल के आर्यकरण पहुँचा
अपनी चरम सीमा तक आठवीं सदी तक और इन आर्यों के
नेता थे नंबूतिरी ब्राह्मण जो केरल के शासक कुलशेखर राजाओं के
शासन काल में हो गये प्रबल सामाजिक व धार्मिक दृष्टि से।

3. बनायी इन ब्राह्मणों ने केरल की उत्पत्ति विषयक एक
मिथकीय कथा कि परशुराम ने अपनी कुल्हाड़ी फेंककर
निकाली भूमि अरब सागर से और केरल का प्रदेश बनाया जिसे
बाहर से लाये गये नंबूतिरी ब्राह्मणों को दे दिया दान में।

4. इसी मिथक के द्वारा वे इस बात को राजा और जनता के
मन में गहरे में बिठा सके कि भूमि के असली मालिक
हैं नंबूतिरी ब्राह्मण और उन्होंने शंकर स्मृति जैसी कुछ नई
स्मृतियाँ बनाकर प्रचार किया समाज में नई अवधारणाओं का।

5. मंदिरों के साथ ही होने से पाठशालायें और युद्धविद्या
के अध्ययन केन्द्र भी मंदिर हो गये सभी आर्थिक
और सांस्कृतिक कार्यों के केन्द्र और उनपर स्थापित
हुआ ब्राह्मणों का एकाधिकार और बढ़ी उनकी प्रभुता भी।

6. नंबूतिरी लोग थे कानून के भी निर्माता और इस कारण
मानते थे राज्य के शासक उनको राजाओं से भी ऊपर
और वे स्वयं बाहर थे कानून की परिधि के और बड़े
अपराध के लिए भी नहीं दिया जाता था दंड उन्हें।

7. लेकिन अछूत जातियों को दिया जाता था मृत्युदंड चोरी,
गोहत्या जैसे अपराधों के लिए और वर्षों तक इस नीति में
आया न बदलाव और आठवीं सदी के बाद वर्ण व्यवस्था में थोड़े-से
परिवर्तन के साथ समाज को बाँटने की व्यवस्था हुई कायम।

8. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में
समाज को बाँटने की व्यवस्था थोड़े-से परिवर्तन के साथ
केरल में लागू की गयी थी सफल ढंग से और इसी बीच
एक नई प्रथा शुरू हुई संबधं नाम से केरल में।

9. संबंधं थी अनौपचारिक विवाह-प्रथा जिसमें नंबूतिरी ब्राह्मण
या राजा लोग किसी भी नायर लडकी से अनौपचारिक विवाह
या विवाहेतर यौन संबन्ध रख सकते थे और इस रिवाज़ के कारण
ब्राह्मणों व राजाओं के सेवक नायर लोग बने अधिक प्रभावशाली।

सोलहवाँ सर्ग

जाति के नाम पर अमानवीय व्यवहार

1. चलती रही यह प्रणाली ज्यों का त्यों बीसवीं सदी के
प्रारंभिक दशकों में भी और उन्नीस सौ एक की कोचीन
राज्य जनगणना के अनुसार नंबूतिरियों और अन्य उच्च
वर्गों से कम्मालन जाति को रहना था चौबीस फुट दूर।

2. निश्चित की गयी थी इसी तरह अन्य अवर्ण जातियों को
छत्तीस, अड़तालीस, चौंसठ, बहत्तर जैसी दूरियों
किन्तु तथ्य है यह भी कि सामन्ती युग में इनमें से
कई जातियाँ सम्मानित जातियाँ थीं केरलीय समाज में।

3. एक ऐसा समाज था श्रीनारायण गुरु के सामने जिसे
विवश किया गया था यह रूढ़मूल विश्वास मानने को
जो अन्याय किया जाता है निम्न जातियों के प्रति
वह सब धर्मशास्त्रों के अनुसार है और न्यायसंगत भी।

4. अवर्णों के मन में यह धारणा दृढ़ बिठायी गयी कि वे श्रेष्ठ
नहीं हैं उच्च जातिवालों से किसी भी बात में और वे लायक
भी नहीं हैं सामान्य मानव अधिकारों को पाने को और नकली
'शंकर स्मृति' द्वारा घोषित किया गया सब कुछ शास्त्र सम्मत।

5. उन्हें मना था प्रवेश मंदिरों के अहाते में और नियत
दूरी पर मंदिरों के बाहरी घेरे के बाहर खडे होकर करनी
होती थी आराधना और कोई चाहें आराधना करना तो
उन्हें केले के पत्तर पर पैसा रखकर खड़ा होना था दूर।

6. अधिकार नहीं था निम्न जाति के लोगों को मंदिरों की
आसपास की सड़कों पर चलने या मंदिर के तालाब में
नहाने का और मंदिर के पास की सड़कों पर रखे जाते थे
अस्पृश्यतासूचक फलक उन्हें चलने को मना करने को।

7. इस बात को एक विरोधाभास कहना ही होगा इसलिए कि
निम्न जातियों के थे केरल के कई प्राचीन मंदिर किंतु

ब्राह्मणों ने उन्हें ले लिया था राजाओं के सहारे जिसके लिए
दृष्टांत है तिरुवनन्तपुरम का पद्मनाभ स्वामी मंदिर।

8. पुलयनारकोट्टा नामक एक किला है तिरुवनन्तपुरम में
वेली झील के किनारे जहाँ पहले एक पुलय राजा का
किला था और प्रसिद्ध पद्मनाभस्वामी मंदिर को भी माना
जाता है कि यह प्राचीन मंदिर पहले था निम्न जातियों का।

9. पुलय औरतें भी करती थी पूजा उस मंदिर की और बाद में
त्रावनकोर के राजा ने बनाकर उसे अपना उस जगह किया
बड़े मंदिर का निर्माण और तदनन्तर उसका विकास
होता ही रहा और कालांतर में वह हुआ वर्तमान रूप में।

10. जब गुरुदेव ने की प्रतिष्ठा शिवलिंग की अरुविप्पुरम में
माँग की थी विविध प्रदेशों से लोगों ने ऐसे मंदिरों की
स्थापना की उनके प्रदेशों में भी और यों निर्मित मंदिरों की
कुल संख्या है बत्तीस जिन में से बीस हैं शिव मंदिर।

11. चार हैं देवी मंदिर, छः हैं कार्तिकेय के और दो मंदिरों में
स्थापना की गयी मूर्ति की जगह प्रतीक मात्र और शिव
मंदिरों में विख्यात हैं कालिकट का श्रीकंठेश्वरम, तलश्शेरी का
जगन्नाथ मंदिर और कण्णूर का सुंदरेश्वरम मंदिर।

सत्रहवाँ सर्ग

देवी शारदा की प्रतिष्ठा

1. प्रतिष्ठा की थी शिवगिरि में सन् उन्नीस सौ बारह में
देवी शारदा की जो भिन्न हैं शृंगेरी में श्रीशंकराचार्य से
स्थापित शारदा मंदिर से इसीलिए कि आचार्य-समाधि के
बाद हो गई शृंगेरी मठ में अधीशता कट्टर ब्राह्मणों की।

2. किंतु शिवगिरि का शारदा मंदिर तो करता है घोषित कि
अवर्ण भी हैं विद्या के अधिकारी वह घोषणा थी महत्वपूर्ण
गुरुदेव ने स्थापना की मुरुकुंपुषा नामक स्थान पर एक वृत्ताकार
प्रभा की जिसके मध्यभाग में अंकित है धर्म दया शांति।

3. गुरुदेव का यह उद्देश्य था महान इन मानवीय
मूल्यों को अंकित करने का और इस मंदिर के द्वारा
सब जनों का ध्यान इन मूल्यों पर आकृष्ट हो और हो
उनका जीवन भी धर्मनिष्ठ दयावंत और शांतियुक्त।

4. यों सोद्देश्य रहा था हर मंदिर का निर्माण और कलवंकोड
नामक जगह पर उन्होंने स्थापना की एक भव्य मंदिर की
जिसमें दर्पण की प्रतिष्ठा की मूर्ति की जगह पर और दर्पण के

मध्य में अंकित है ऊँ शांति और यह मंदिर भी है प्रेरणादायक।

5. दिया निर्देश गुरुदेव ने कि होना चाहिए प्रत्येक मंदिर का
परिसर साफ-सुथरा और वहाँ हो एक उद्यान मनोहर
और साथ ही हो लोगों को बैठकर आराम करने की जगह
और साथ ही हो धार्मिक पुस्तकालय भी करने लोगों को प्रबुद्ध।

6. गुरुदेव-निर्मित मंदिरों ने मुक्त किया अवर्णों को दूर खड़े
होकर आराधना करने की गुलामी से जो था एक कार्य ऐतिहासिक
महत्व का और इसी के साथ बदल गया पूर्णतया अवर्णों का
धार्मिक दृष्टिकोण और हुआ प्रत्येक मंदिर एक सांस्कृतिक केन्द्र।

7. पहले होते थे सिर्फ ब्राह्मण पुरोहित मंदिरों के और
श्रीनारायणगुरु द्वारा निर्मित मंदिरों में प्रशिक्षण प्राप्त
निम्न जाति के लोग बनाये गये मंदिरों के पुरोहित
जो था एक क्रांतिकारी और युगांतरकारी पहल।

अठारहवाँ सर्ग

पुनः मानवीकरण

1. असल में किया था गुरुदेव ने ही सामाजिक आन्दोलन के
आरंभ के रूप में निम्न जाति के लोगों में सृष्टि की
एक नई अवधारणा कि वे भी हैं मनुष्य और है उन्हें भी
अधिकार देवताओं की प्रतिष्ठा व आराधना करने का।

2. उत्पन्न हुआ इसी अवबोध से उनमें नई चेतना
और उत्साह और साथ ही हुआ जनकोटियों के
पुनःमानवीकरण का आधार भी और समझने लगे वे कि
धार्मिक मामलों में वे नहीं हैं हीन और निम्न कोटि के।

3. मुक्त हो विद्या से और बनो शक्तिशाली संगठन से सदृश
आह्वानों ने डाला सब पर मांत्रिक प्रभाव जिस पर परवर्ती
काल में तिरु-कोच्ची के पूर्व मुख्य मंत्री सी.केशवन ने कहा कि
मेरे लिए गुरुदेव की सफलता का रहस्य अज्ञात है आज भी।

4. जब ईसा मसीह हुए दिवंगत तो बहुत कम थे उनके अनुयायी
उनके संदेश का प्रचार करने के लिए मिले किंतु बुद्ध को
मिला समर्थन राष्ट्रशक्ति का किन्तु लेते हुए धर्म का
हथियार मुक्ति संघर्ष में विजय प्राप्त पुरुष थे श्रीनारायण गुरु।

5. एक अनूठी बात होती है एक संन्यासी का समाज सुधारक
होना साथ ही एक समाज-सुधारक का संन्यासी होना
नहीं देखा गुरुदेव ने आध्यात्मिकता और भौतिकता को अलग-
अलग और दोनों हैं जीवन के अनिवार्य तत्त्व उनकी दृष्टि में।

6. वे थे सच्चे मित्र एवं करुणामय अपने आश्रितों के प्रति
और बने सब के आराध्य अपने ब्रह्मचर्य तपस्या ईश्वर-
भक्ति और सर्वधर्म समदर्शिता के कारण और स्वीकार किया
उनकी महानता को हृदय से उच्च जाति के अनेक ने भी।

7. दिशानिर्देश दिया गुरुदेव ने समस्त क्षेत्रों में जीवन के और
पड़ी उनकी सूक्ष्म दृष्टि खेतीबारी शिक्षा उद्योग व कला के
क्षेत्रों में हो रहे परिवर्तनों पर और बोया उन्होंने समाज में
क्रांति के बीज बिना किसी के प्रति घृणा या वैमनस्य के।

8. उन दिनों बहुत-सी यात्रायें करते थे गुरुदेव मंदिरों की
स्थापना और सामाजिक जागरण के कार्यों के लिए और साथ ही
करते थे देखभाल अरुविप्पुरम मंदिर मठ और वहाँ दान में प्राप्त
ज़मीन की और लगे रहते थे अन्य सामाजिक गतिविधियों में भी।

9. सारा काम सुचारु रूप से करने को बनाया गया एक संघ
अरुविप्पुरम क्षेत्रयोगं नाम से जो हुआ पंजीकृत भी यही
संघ विख्यात हुआ कालांतर में श्रीनारायण धर्म परिपालन योगं
नाम से और उसका संक्षिप्त रूप एस.एन.डी.पी. नाम से भी।

10. लिखा है सांस्कृतिक क्षेत्र के पुरोधा और प्रसिद्ध लेखक
मूर्कोत कुमारन ने गुरुदेव की जीवनी में कि काम
करने की उनकी शैली है अतिविशिष्ट और बल दिया
उन्होंने भाषण से बढ़कर ठोस काम करने के आदर्श पर ।

11. प्रतीत हुआ लोगों को मित भाषी एवं अकसर मौन रहती
उनकी आत्मा संवाद करती थी दूसरों की आत्मा से
और इसीलिए तो माना जनता ने उनके स्नेहपूर्ण आदेशों को
और मुक्त हुए वे सदा के लिए भूत-प्रेत की आराधना से।

12. लिखा है गुरुदेव के जीवनीकार श्री.एम.के.सानु ने भी कि
उन दिनों प्रचलित थीं कई कहानियाँ उनके चमत्कारों से
संबद्ध विशेषकर निम्न जाति के लोगों के बीच और देखा
उनको ईश्वर के प्रतिरूप में और की उनकी आराधना भी।

13. डॉ.पल्पू लड़ते थे निरन्तर निम्न वर्ग के अधिकारों के लिए
और उन दिनों संगठन के सचिव थे कुमारन आशान जो
विख्यात हुए बाद में मलयालम के क्रांतिकारी कवि के रूप में
और इन मनीषियों के सफल नेतृत्व में हुआ संगठन कर्मण्य। (क्रमशः)

किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया का प्रभाव

डॉ राजू सी पी

सारांश : (युगान्तर में सोशल मीडिया का उपयोग तिजोरी के समान है, जिसमें अनगिनत सन्देश और जानकारियों की खूबसूरत छमाही है। आज के समय में उभरते हुए सोशल मीडिया के प्लेटफॉर्म ने सिर्फ अन्य माध्यमों से भी स्वास्थ्य सम्बंधित संवाद को बढ़ावा दिया है, बल्कि इसने किशोरों को भी इस उच्चस्तर का भागीदार बनाया है। इस अलगवाद भरे दुनिया में किशोरों के सोशल मीडिया के उपयोग पर कई विचार हैं। इनमें से एक विचार है कि सोशल मीडिया के उपयोग से किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ सकता है। इस लेख में हम इस विचार पर ध्यान केंद्रित करेंगे और सोशल मीडिया के उपयोग का कैसे किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य पर असर होता है, इसे विस्तार से विश्लेषण करेंगे। हमारा ध्येय है कि इस लेख के माध्यम से सोशल मीडिया के प्रभाव को समझने में मदद करें और साथ ही इससे बचने के तरीकों को भी प्रस्तुत करें)

बीज शब्दः- किशोर, सोशल मीडिया, तनाव, समाजिक तुलनात्मकता, असमंजस, स्वास्थ्य, नकारात्मक, सकारात्मक।

सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोगः किशोरों में अत्यधिक समय सोशल मीडिया पर व्यतीत करने से उत्पन्न होने वाला तनाव।

सोशल मीडिया ने हमारे जीवन में कई बदलाव लाए हैं और इसका उपयोग हमारे दैनिक जीवन के हर क्षेत्र में है। यह हमें दूर स्थानों के लोगों से जुड़ने और विविध सामाजिक मुद्दों पर चर्चा करने की सुविधा प्रदान करता है। इसके अलावा, सोशल मीडिया एक मनोरंजक माध्यम भी है जो हमारे जीवन को आकर्षक बनाता है। हालांकि, इसके अत्यधिक उपयोग की वजह से यह ऐतिहासिक उपलब्धि हमारे लिए हानिकारक भी हो सकती है। खासकर किशोरों को सोशल मीडिया पर अधिक समय बिताने के दौरान तनाव का अनुभव किया जाता है।

किशोरों का भारतीय समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान है और सोशल मीडिया, आधुनिक दुनिया में वे एक आवाज हैं। यहाँ तक कि कुछ तजुर्बे बताते हैं कि किशोरों के लिए सोशल मीडिया एक महत्वपूर्ण साधन हो सकता है जो उन्हें स्वयं को सिद्ध करने की अनुमति देता है। इसलिए, यह सभी के लिए सामाजिक माध्यम की तरह नहीं है, परन्तु तरुणामांस के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा से अत्यधिक उपयोग की एक विधा हो सकती है। हालांकि, यह सोशल मीडिया का उपयोग किशोरों के द्वारा अधिक व्यापक प्रयोग की वज़ह से उनके जीवन में स्थायी बदलाव पैदा कर सकता है।

सोशल मीडिया के सुविधाजनक क्षमताओं के बावजूद, किशोरों को अधिक समय सोशल मीडिया पर व्यतीत करने से स्वस्थ्य और शिक्षा की समस्याओं से भी आगाह होना चाहिए। अतिरिक्त सामाजिक माध्यम के उपयोग से आंतरिक तनाव कम हो सकता है, जिससे युवाओं का स्वास्थ्य और शिक्षा पहले से स्थिर हो सकता है। किशोरों को सोशल मीडिया का सकारात्मक उपयोग करने के लिए उन्हें समय-समय पर उनकी स्मार्टफोन की उपस्थिति पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। किशोरों को सोशल मीडिया का सकारात्मक व्यापार करने और सामाजिक समाचार को जांचने की संभावना है ताकि वे उनके भविष्य को संवार सकें।

समारोह के रूप में, हम सोशल मीडिया की उपयोगिता को बढ़ाने के साथ-साथ अधिकतम समय सीमा के कारण विभिन्न व्यक्तियों और समुदायों में तनाव और अन्य दुष्प्रभावों से सकारात्मक उपयोग और खराब उपयोग के बीच बल स्थापित करने की आवश्यकता है।

सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोग न केवल व्यक्तियों के स्वास्थ्य और शिक्षा को प्रभावित करता है, बल्कि उनके समाज का भविष्य भी। इसलिए, समझदार और सक्रिय ढंग से सोशल मीडिया का उपयोग करने से हमारे दैनिक जीवन को सुगम और खुशहाल रखने में मदद मिलेगी।

समाजिक तुलनात्मकता: सोशल मीडिया पर अपने जीवन को लेकर अन्य लोगों के साथ तुलना करने से उत्पन्न होने वाला प्रेशर और तनाव।

समाजिक तुलनात्मकता एक अहम विषय है जो सोशल मीडिया पर अपने जीवन को लेकर लोगों को तनाव और दबाव का अनुभव करते हैं। इसका अर्थ है कि लोग अपनी जिंदगी को अन्य लोगों की जिंदगी से तुलना करते हैं और अपने आप को उनसे कम सफल मानते हैं। यह चलन उन्हें सफलता के प्रति अधिक भावुक बनाता है और उन्हें दबाव में डालता है कि वे अपने जीवन में भी उसी तरह सफल हों जैसे दूसरे लोग हैं।

सोशल मीडिया पर तुलनात्मकता के कारण लोगों को अपने जीवन में विभिन्न तरह के तनाव का सामना करना पड़ता है। वे खुद को दूसरों से हमेशा कम करते देखते हैं और इस बात को हमेशा भूल जाते हैं कि हर इंसान अलग होता है और हर कोई अपने आप में सफल होता है। इस सफलता की कला को समझाने के लिए लोगों को सोशल मीडिया पर अपने जीवन की सफलता को दूसरों से तुलना नहीं करना चाहिए। यह उन्हें स्वयं को और अपने जीवन को स्वीकार करने की कला सिखाता है।

इस तुलनात्मकता का असर भी लोगों के दिमागी स्वास्थ्य पर होता है। लोग सोशल मीडिया पर तुलनात्मक विचारों और भावनाओं से भरे हुए हैं जो उन्हें अपने जीवन पर प्रभाव डालते हैं। यह दबाव का कारण नहीं सिर्फ उन लोगों को अपने आप से कम महसूस कराता है जो तुलनात्मकता में उलझने लगते हैं, बल्कि उन्हें दुसरों को भी अपने आसपास देखने की आदत डालता है। इससे उनका ध्यान अपने असली संघर्षों से हट जाता है और वे सोशल मीडिया की खुशी के पीछे छिपे स्पंदनों से अनजान रहते हैं। अतः सोशल मीडिया का सकारात्मक इस्तेमाल करना शुरू करना चाहिए जो कि अपने जीवन को वास्तविक और स्वीकार्य तरीके से देखने में मदद करेगा।

समाजिक तुलनात्मकता सोशल मीडिया पर अपने जीवन को लेकर अन्य लोगों के साथ तुलना करने का एक गलत तरीका है। यह हमेशा कोई न कोई तनाव लेकर आता है और लोगों को उनके असली जीवन से दूर ले जाता है। सोशल मीडिया का उपयोग सुधारने के लिए हमें अपने जीवन की सफलता को अपने आसपास के लोगों की सफलता से तुलना नहीं करनी चाहिए। हमें अपने जीवन को स्वीकार करना और उसकी सफलता को अपने तरीके से मापना चाहिए। सोशल मीडिया का सकारात्मक इस्तेमाल हमें खुद को और अपने साथियों को भी स्वीकार करने की कला सिखाता है जो कि हमें स्वस्थ और समृद्ध जीवन का संतुलन बनाए रखने में मदद करता है।

सामाजिक मीडिया पर सकारात्मक और नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ: किशोरों को नकारात्मक प्रतिक्रियाओं का सामना करना और इसका प्रभाव।

सामाजिक मीडिया आजकल हमारे समाज का अहम अंग बन चुका है। यह न केवल हमें खबरों और नवीनतम ट्रेंड्स से अवगत कराता है, बल्कि बच्चों और किशोरों के लिए भी एक महत्वपूर्ण स्रोत होता है। इससे वे दुनिया में होने वाली गतिविधियों के साथ जुड़ सकते हैं। बच्चों और किशोरों के लिए यह तो एक उत्तम संसाधन है, लेकिन साथ ही इसमें सकारात्मक और नकारात्मक प्रतिक्रियाओं का भी खतरा है।

सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ बच्चों और किशोरों के लिए सामाजिक मीडिया का प्रभाव बहुत ही अच्छा हो सकता है। इससे उन्हें सकारात्मक सोचने की क्षमता बढ़ती है और वे अपने स्वयं को प्रोत्साहित करने के ऊपर ध्यान केंद्रित करते हैं। साथ ही यह उन्हें सामाजिक हितों के बारे में जानने का भी अवसर देता है। उदाहरण के लिए, किसी भारतीय युवा ने अपने सोशल मीडिया पर एक स्वच्छता

अभियान की शुरु आत की और बहुत से लोगों को इसमें शामिल किया। इससे वह बहुत से दूसरे युवाओं को प्रेरित करने में सक्षम हुआ और साथ ही अपने देश के लिए अच्छी तरह से कुछ करने का ठीक रास्ता भी दिखाया।

सामाजिक मीडिया का उपयोग करके बच्चों और किशोरों को सकारात्मक प्रतिक्रियाओं को समझने और उनसे उपलब्धियों को साझा करने का अवसर मिलता है। इसके साथ ही हमें सामाजिक मीडिया पर चली जा रही नकारात्मक प्रतिक्रियाओं और उनसे बचने के उपायों के बारे में भी जागरूक रहना चाहिए। हमें सामाजिक मीडिया पर नकारात्मक लोगों को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए और अपने बच्चों को सामाजिक दबाव से दूर रखने की क्षमता देनी चाहिए। इससे हम अपने बच्चों को साकार केंद्रित सोचने की क्षमता प्रदान करेंगे और इससे उनका भविष्य भी उज्ज्वल हो सकेगा।

सोशल मीडिया पर अपने शरीर और आत्मा को लेकर नकारात्मक तुलनाः स्वास्थ्य और स्वाभाविकता के मानकों के साथ तुलना करने के कारण होने वाला तनाव।

आजकल सोशल मीडिया जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है जहाँ लोग अपने दैनिक जीवन के दोस्त, परिवार और समाज से जुड़ सकते हैं। इसके साथ ही सोशल मीडिया ने हमारे शरीर और आत्मा को लेकर नकारात्मक तुलनाओं की बढ़ती प्रतिस्पर्धा का भी सबब बन गया है। लोग अपने शरीर को लेकर अपनी आत्मा की तुलना करने और सोशल मीडिया पर खुद को प्रदर्शित करके दूसरों को प्रभावित करने के चक्कर में ज्यादा तनाव भी अनुभव करते हैं।

सोशल मीडिया पर लोग अपने शरीर को लेकर नकारात्मक तुलनाओं से जूझते हैं। ये तुलनाएँ अक्सर समूह भावना, व्यक्तिगत चिड़चिड़ापन और सहनशीलता पर बुरा प्रभाव डालती हैं। सोशल मीडिया पर अपनी तस्वीरें पोस्ट करने, स्वस्थ तनाव और दुबलेपन के लिए भावनात्मक तनाव उत्पन्न कर सकते हैं। इससे न केवल दूसरों के साथ तुलना करने में तनाव उत्पन्न होता है, बल्कि इससे हमारे स्वास्थ्य और स्वाभाविकता के मानकों को भी नुकसान पहुँच सकता है। इससे हमारे खुद के साथ रहने का भय बढ़ जाता है और हम पर अत्यधिक तनाव आ सकता है।

सोशल मीडिया पर तनाव की उंगली पर उठते हैं, हमें ये भूल जाना चाहिए कि आत्मा और शरीर दोनों की भावनाएँ अलग होती हैं और इन दोनों की तुलना करने में कोई स्थायित्व नहीं है। सोशल मीडिया एक उपयुक्तमाध्यम है लेकिन हमें इसका सत्य और गलत को पहचानने की क्षमता रखनी चाहिए। हमे अपने शरीर की नकारात्मक तुलनाओं से मुक्त रहना चाहिए और सोशल मीडिया को अपने स्वास्थ्य और स्वाभाविकता का कारक बनाना चाहिए, न कि उससे भावनात्मक तनाव का स्रोत।

समारोह की आदेशिका के रूप में, हमें सोशल मीडिया पर आत्मा और शरीर के साथ जुड़ी तुलनात्मक व्यक्तिगत चुनौतियों को स्वीकार करना चाहिए। हमें अपने स्वास्थ्य और स्वाभाविकता को महत्व देना चाहिए और सोशल मीडिया को अपने शरीर और आत्मा की तुलना करने के लिए अपनी तुक्के न बनने देना चाहिए। हमें अपने शरीर को स्वीकारना चाहिए और उसे स्वस्थ और स्वास्थ्य व्यक्तित्त्व का एक अंग मानना चाहिए। सोशल मीडिया को हमारे जीवन में हमारे लिए उपयोगी एक साधन बनाने का उद्देश्य होना चाहिए, न कि तनाव का स्रोत।

निष्कर्ष : सोशल मीडिया आज किशोरों के जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। वे इसका अधिक उपयोग करते हैं अपने दोस्तों से जुड़ने, नए जानकारियों को पाने और अन्य विभिन्न कामों के लिए। जैसा कि हम जानते हैं कि किशोरों के अवसाद, बाधा और अन्य मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के मामले आजकल बहुत बढ़ रहे हैं। सोशल मीडिया का प्रभाव भी इसमें एक अहम भूमिका निभाता है। इसमें कुछ लोग अपने जीवन में सोशल मीडिया के प्रभाव को सकारात्मक मानते हैं। वे इससे नए ज्ञान और समाचार का स्त्रोत बन सकते हैं और बहुत से कौशल शिक्षा को प्राप्त कर सकते हैं। साथ ही, यह उन्हें सामाजिक

जीवन में जोड़ता है और सही नेटवर्किंग के माध्यम से उनके स्वार्थागार और प्रतियोगिताओं को अनुकूल बनाता है।

अंत में, मैं यही कहना चाहूँगा कि सोशल मीडिया का किशोरों पर सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव दोनों हो सकता है और हमें उपयोग का ठीक चुनाव करना चाहिए। सही निर्णय लेकर हम सोशल मीडिया का सही से उपयोग करते हुए अपने किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित कर सकते हैं।

संदर्भ

1. एस.के. मंगल (2007), एसेंशियल्स ऑफ एजुकेशनल साइकोलॉजी, प्रेंटिस हॉल इंडिया लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
2. बी.सी.राय (1985), शैक्षिक मनोविज्ञान, प्रकाशन केन्द्र लखनउ।
3. डॉ. एस. पी. कुलक्षेत्र (2005), शैक्षिक मनोविज्ञान, आर. लाल बुक डिपो मेरठ।
4. डॉ. जडसन ब्रूअर (2021), अनवाईंडिंग एंग्जाइटी, एबरी पब्लिशर्स, लंदन।
5. फेयेघ यूसेफी (2012), डिप्रेशन, टेस्ट चिंता और मेमोरी, एलएपी लैंबर्ट अकादमिक प्रकाशन, मोल्दोवा।
6. गौड्री, ई., और स्पीलबर्गर, सी (1971), चिंता और शैक्षिक उपलब्धि, जॉन विले एंड संस, ऑस्ट्रेलिया प्राइवेट। लिमिटेड, सिडनी।
7. अंसारी. जी और रहमान. जेड (1981), 'माता-पिता की स्वीकृति और सहकर्मी स्वीकृति के संबंध में चिंता का एक अध्ययन', जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड साइकॉलजी।
8. के. मल्लिका और डॉ. पी. रेणुका (2018), 'किशोरों के संदर्भ में शैक्षिक चिंता', एडुट्रैक्स जर्नल व ?ल्यूम.18.
9. https://arcadiancounseling.com/
10. https://mantracare.org/therapy/depression/chronic-dysthymia/
11. लिंडा पापडोपोलस, (2017), सोशल मीडिया युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य को कैसे प्रभावित करता है https://www.internetmatters.org/hi/hub/expert-opinion/social-media-impact-mental-health-young-people/
12. सोशल मीडिया किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य को कैसे प्रभावित करता है? मानसिक स्वास्थ्य, एमएचएम समूह,(2023), https://mhmgroup. com/how-does-social-media-impact-teen-mental-health/
13. Health advisory on social media use in adolescence, https: //www.apa.org/ topics/social-media-internet/health-advisory-adolescent-social-media-use
14. Social Media and Youth Mental Health (2023), The U.S. Surgeon General Advisory https://www.ncbi.nlm.nih.gov/books/NBK594763/
15. किशोर और सोशल मीडिया का उपयोगः क्या प्रभाव है? मेयो क्लिनिक स्टाफ द्वारा, (2024), https://www.mayoclinic.org/healthy-lifestyle/tween-and-teen-health/in-depth/teens-and-social-media-use/art-20474437

असोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष , हिन्दी विभाग
सेंट अलोष्यस कॉलेज , तृश्शूर, केरल।

सूचना

केरल ज्योति के पाठकों एवं हितैषियों को सूचित किया जाता है कि 1 जनवरी 2025 से केरल ज्योति पत्रिका के एक प्रति का मूल्य रु. 40/- और आजीवन छंदा रु.4,000/- एवं वार्षिक छंदा रु. 400/– निश्चित किया गया है। विज्ञापन दर पर परिवर्तन नहीं किया है और पूर्व दर जारी रहेगा। आशा है कि सभी पाठकों और हितैषियों का सहयोग मिलता रहेगा।

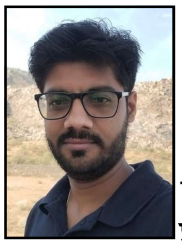

जीवन कौशल शिक्षा की आवश्यकता और इंग्लिश विंग्लिश चलचित्र में जीवन कौशल प्रस्तुति

डॉ रिंकू भाटिया / दीपेश परमार

प्रस्तावना : जीवन कौशल को 'अनुकूली और सकारात्मक व्यवहार की क्षमताओं जिंदगी की मांगों और चुनौतियों के साथ' के रूप में परिभाषित किया गया है, जो व्यक्तियों को प्रभावी ढंग से निपटने में सक्षम बनाता है (डब्ल्यूएचओ. 1993)। ये अनिवार्य रूप से वे क्षमताएँ हैं जो युवाओं में मानसिक कल्याण और क्षमता को बढ़ावा देने में मदद करती हैं, लोग जीवन की वास्तविकताओं का सामना करते हैं। दूसरे, बच्चों को कौशल सीखने और अभ्यास करने में सक्षम बनाना, जीवन कौशल शिक्षा बाल-केंद्रित और गतिविधि उन्मुख पद्धति पर आधारित है। जीवन कौशल जो बच्चों के स्वास्थ्य और कल्याण को बढ़ावा देने के लिए सिखाए जा रहे हैं।

अंत में, जीवन कौशल शिक्षा इस दर्शन पर आधारित है कि युवाओं को और अधिक उनके कार्यों के लिए जिम्मेदारी लेने के लिए सशक्तबनाया जाना चाहिए।

डब्ल्यूएचओ के अनुसार जीवन कौशल:

1. आत्म-जागरूकता- में 'स्वयं', हमारे चरित्र, हमारी ताकत, कमज़ोरियाँ, इच्छाएँ और नापसंद आदि की पहचान शामिल हैं। । आत्म-जागरूकता विकसित करने से हमें पहचानने में मदद मिल सकती है। जब हम तनावग्रस्त होते हैं या दबाव महसूस करते हैं। यह अक्सर प्रभावी होने के लिए एक पूर्व शर्त होती है। संचार और पारस्परिक संबंधों के साथ-साथ सहानुभूति विकसित करने के लिए मदद मिल सकती है।

2. सहानुभूति - अपने प्रियजनों और बड़े पैमाने पर समाज के साथ एक सफल संबंध बनाने के लिए, हमें दूसरे लोगों -माता-पिता, भाई-बहन, चचेरे भाई-बहन, चाचा-चाची, सहपाठी, दोस्त और पड़ोसी की ज़रूरतों, इच्छाओं और भावनाओं को समझने और उनकी परवाह करने की ज़रूरत है। सहानुभूति यह कल्पना करने की क्षमता है कि किसी अन्य व्यक्तिका जीवन कैसा है। बिना सहानुभूति, दूसरों के साथ हमारा संचार एकतरफा यातायात के बराबर होगा। हम अपने स्वार्थ के अनुसार कार्य और व्यवहार करते हैं।सहानुभूति हमें दूसरों को स्वीकार करने में मदद कर सकती है, जो हमसे बहुत अलग हो सकते हैं।

3. आलोचनात्मक सोच- किसी उद्देश्य में जानकारी और अनुभवों का विश्लेषण करने की क्षमता है ढंग। आलोचनात्मक सोच हमें पहचानने में मदद करके स्वास्थ्य में योगदान कर सकती है उन कारकों का आकलन करें जो दृष्टिकोण और व्यवहार को प्रभावित करते हैं, जैसे मूल्य, सहकर्मी दबाव और मीडिया।

4. रचनात्मक सोच- चीज़ों को देखने या करने का एक नया तरीका है जो कि विशिष्ट है चार घटक - प्रवाह (नए विचार उत्पन्न करना), लचीलापन (परिप्रेक्ष्य बदलना), मौलिकता (किसी नई चीज़ की कल्पना करना), और विस्तार (आगे बढ़ना)।

5. निर्णय लेने से हमें अपने जीवन के बारे में रचनात्मक निर्णय लेने में मदद मिलती है। ये स्वास्थ्य पर परिणाम हो सकते हैं, यह लोगों को सक्रिय रूप से निर्णय लेना सिखा सकता है। विभिन्न विकल्पों के स्वस्थ मूल्यांकन के संबंध में उनके कार्यों के बारे में और, क्या इन विभिन्न निर्णयों का प्रभाव पड़ने की संभावना है।

6. समस्या समाधान- हमें अपने जीवन में समस्याओं से रचनात्मक ढंग से निपटने में मदद करता है। महत्वपूर्ण समस्याएँ जो अनसुलझी रह जाती हैं, वे मानसिक तनाव, शारीरिक तनाव का कारण बन सकती हैं।

7. पारस्परिक संबंध कौशल- हमें लोगों के साथ सकारात्मक तरीके से जुड़ने में मदद करते हैं। इसका मतलब मैत्रीपूर्ण संबंध बनाने और बनाए रखने में सक्षम होना हो सकता है, जो हमारे मानसिक और सामाजिक कल्याण के लिए बहुत महत्वपूर्ण हो सकता है। इसका मतलब यह हो सकता है परिवार के सदस्यों के साथ अच्छे संबंध बनाए रखना, जो सामाजिकता का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इसका अर्थ रिश्तों को रचनात्मक ढंग से समाप्त करने में सक्षम होना भी हो सकता है।

8. प्रभावी संचार- का अर्थ है कि हम स्वयं को अभिव्यक्त करने में सक्षम हैं मौखिक और गैर-मौखिक रूप से, उन तरीकों से जो हमारी संस्कृतियों और स्थितियों के लिए उपयुक्तहों। इसका मतलब है राय और इच्छाओं, साथ ही जरूरतों और डर को व्यक्तकरने में सक्षम होना।

9. तनाव से निपटने का अर्थ है हमारे जीवन में तनाव के

स्रोतों को पहचानना। यह हमें कैसे प्रभावित करता है, और उन तरीकों से कार्य करना जो हमें तनाव के स्तर को नियंत्रित करने में मदद करते हैं।अपने वातावरण या जीवनशैली को बदलना और आराम करना सीखना।

10. भावनाओं से निपटने का अर्थ है अपने अंदर की भावनाओं को पहचानना। अन्य, इस बात से अवगत होना कि भावनाएँ व्यवहार को कैसे प्रभावित करती हैं और प्रतिक्रिया देने में सक्षम हैं। भावनाएँ उचित रूप से क्रोध या उदासी जैसी तीव्र भावनाएँ नकारात्मक हो सकती हैं।यदि हम उचित प्रतिक्रिया नहीं देते हैं तो हमारे स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है।

जीवन कौशल शिक्षा की आवश्यकता: जीवन कौशल दृष्टिकोण आम तौर पर आत्म-सम्मान और आत्म-प्रभावकारिता की जरूरत को बढ़ावा देने के लिए काम करते हैं,जो स्वास्थ्य संवर्धन और प्राथमिक में मनोसामाजिक कारकों पर जोर देता है।

रोकथाम, बड़ी संख्या में शोध अध्ययनों से उजागर होती है जो इसका स्थान दर्शाती है।व्यवहार-संबंधी स्वास्थ्य समस्याओं से जुड़े मध्यस्थ या कारण कारक के रूप में मनोसामाजिक कारक है। व्यवहार-संबंधी स्वास्थ्य और सामाजिक में मध्यस्थ कारकों के रूप में आत्म-सम्मान और आत्म-प्रभावकारिता का स्थान, समस्याओं का बार-बार उल्लेख किया जाता है। जीवन कौशल शिक्षा दृष्टिकोण की आवश्यकता भी अक्सर अनुसंधान से निष्कर्ष निकाला जाता है जो व्यवहार-संबंधी स्वास्थ्य समस्याओं की मनोसामाजिक उत्पत्ति को दर्शाता है। एक अध्ययन मादक द्रव्यों के सेवन से संबंधित महत्वपूर्ण कारक में तीन बाल कम आत्मसम्मान वाले भावनाओं और संचार कौशल करने में असमर्थ की कमी वाले पाए गए (मैकडोनाल्ड एट अल. 1991)। संज्ञानात्मक प्रदर्शन आत्म-प्रभावकारिता को शैक्षणिक और सुधार के साथ भी जुड़ा हुआ पाया गया है। संज्ञानात्मक प्रदर्शन भारत में एक अध्ययन में पाया गया कि उच्च कथित आत्म-प्रभावकारिता का परिणाम बेहतर होता है(सिंह. 1985)। श्रीलंका में, 37 स्कूलों में 832 दसवीं कक्षा के छात्रों का एक अध्ययन और योग्यता की भावना और स्कूल की उपलब्धि के बीच इस संबंध को प्रदर्शित किया है (नाइल्स. 1986) यह भी सुझाव दिया गया है कि छात्र की कथित प्रभावकारिता स्व-विनियमित सीखना, शैक्षणिक उपलब्धि के लिए उनकी अपेक्षाओं को प्रभावित करता है (ज़िम्मिरमैन एट अल. 1992)।

इंग्लिश विंग्लिश चलचित्र में जीवन कौशल प्रस्तुति: इंग्लिश विंग्लिश उन असंख्य तरीकों पर एक सुंदर प्रस्तुति है जिससे हर उम्र के लोग अपने जीवन को बेहतर बना सकते हैं। 2012 में रिलीज़ हुई, यह बॉलीवुड फिल्म जीवन के कई पाठों का खुलासा करती है जो वर्तमान समय और सभी के लिए प्रासंगिक हैं। आत्मविश्वास से भरपूर नायिका हर किसी को खुद से प्यार करने के लिए प्रेरित करती है ताकि जीवन की सभी सांसारिक चीजों को ताजा और खूबसूरत अनुभवों में बदल सके। जो छात्र इस फ़िल्म को देखेंगे वे एक महत्वपूर्ण सबक सीखेंगे कि कुछ भी नए सिरे से शुरू करने में कभी देर नहीं होती। यह उन्हें जीवन और सफलता का अनुभव करने के लिए अपने आराम क्षेत्र से बाहर निकलने के लिए भी प्रेरित करता है, और जीवन कौशल को बढ़ावा देने पर जोर देता है।

समापन : जीवन कौशल शिक्षा का उद्देश्य दैनिक चुनौतियों से अधिक आसानी से निपटने के लिए युवाओं और युवा वयस्कों के बीच पारस्परिक, आलोचनात्मक सोच, आत्म-जागरूकता और समस्या-समाधान क्षमताओं को बढ़ावा देना है। जीवन कौशल अनिवार्य रूप से वे क्षमताएँ हैं जो युवा लोगों में मानसिक कल्याण और क्षमता को बढ़ावा देने में मदद करती हैं क्योंकि वे जीवन की वास्तविकताओं का सामना करते हैं। अधिकांश विकास पेशेवर इस बात से सहमत हैं कि जीवन कौशल आमतौर पर स्वास्थ्य और सामाजिक घटनाओं के संदर्भ में लागू होते हैं।

संदर्भ सूचि

MacDonald L., Bradish, D.C., Billingham, S., Dibble, N. and Rice, C. (1991). Families and schools together: an innovative substance abuse prevention program. Social Work in Education, (13)2, 118- 128.
Niles. F. S. (1986). Socioeconomic Status, attitudes and academic achievement in a developing society. Journal of Developing Areas. 20(4) July, 491-499.
Singh, S. (1985). Perceived self-efficacy and intellectual performance of socially disadvantaged students. Journal of Social Psychology, 125(2), 267-268.
https://iris.who.int/bitstream/handle/10665/338491/MNH-PSF-96.2.Rev.1-eng.pdf
https://en.wikipedia.org/wiki/English_Vinglish
https://en.wikipedia.org/wiki/Life_skills

डॉ. रिंकू भाटिया
आसिस्टैंट प्रोफेसर, श्री भीखाभाई पटेल इंस्टीट्यूट ऑफ पीजी स्टडीज एंड रिसर्च इन ह्यूमैनिटीज

श्री दीपेश परमार
पीएच. डी. शोधकर्ता, शिक्षा विभाग,
एम एस विश्वविद्यालय ऑफ़ बरोड़ा वड़ोदरा

"शब्द पखेरू" में व्यक्त उत्तराधुनिक जीवन त्रासदी

डॉ गायत्री एन

हिंदी कथा साहित्य की अनन्य लेखिका नासिरा शर्मा द्वारा लिखा गया उपन्यास "शब्द पखेरू " की कहानी साइबर अपराध पर आधारित है।सूचना एवं संचार क्रान्ति के तकनीकी विकास ने दुनिया को हमारे मुट्ठी में रख दिया है।चौबीसों घंटे ऑनलाइन में होते,कमेंट बॉक्स पर लायक कमेंट को जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि माने जाने लगा है।नासिराजी ने इसी उद्देश्य को शब्द पखेरू के माध्यम से सफलता के साथ प्रस्तुत किया है। भूमंडलीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तृवाद, अत्याधुनिक जीवन शैली की यांत्रिकता, मशीनीकरण अदि वर्तमान सभ्यता के संकट हैं। इन्टरनेट की आभासी वास्तविक यथार्थ से पाठकों को परिचित करना इस रचना का उद्देश्य है। 'शब्द पखेरू' में अनेक समकालीन समस्याओं का विश्लेषण किया गया है।यथा आर्थिक विसंगतियाँ,अकेलेपन की त्रासदी, नारी विमर्श,बुजुर्गों से अनुपस्थित युवा लोग आदि ।

इस उपन्यास में एक मध्यमवर्गीय सरकारी कर्मचारी सूर्यकांत और उनकी पत्नी साधना की दैनिक कठिनाइयों का वर्णन है। सूर्यकांत की पत्नी साधना दो वर्षों से घर में बीमार पड़ी है। उसकी नौकरी भी छूट गयी। तब सूर्यकान्त के रिश्तेदार दिल्ली आकर घूमे थे। "जो साधना की देखरेख के लिए लाज शरम के मारे आने कुबूल कर लिया, जब वफादार नौकर भी बेवफा साबित हुयी ,तो उन्हीं का सहारा लेना पड़ा था।"[1] तब सूर्यकान्त को लगा था कि "डॉक्टर के बाद अगर कोई ईस्वर का अवतार है,तो वह रिश्तेदार है।"[2] शुरू -शुरू में एक -एक करके सभी ने महीने दो महीने उनपर अकस्मात् आई मुसीबत को बांटा। "मगर अपना घर परिवार छोड़कर कौन कहाँ तक आकर रहता।"[3] चालीस वर्षीया साधना वर्मा इस उपन्यास का अबोल पात्र है, बीमारी के बाद उसके मुंह से छोटी मोटी आवाज़ ही निकल सकती थी। "उनकी आवाज़ जानने का कोई कारण डॉक्टरों की समझ में नहीं आया।"[4]

उत्तराधुनिकता की दृष्टि से शब्द पखेरू एक सफल रचना कही जा सकती है। सूर्यकांत वर्मा, पत्नी साधना और बेटियाँ मनीषा और शैलजा के दिल्ली महानगरीय सामाजिक जीवन की पृष्टभूमि में उत्तराधुनिक विसंगतियों को विश्लेषित किया गया है। इसमें सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म की भारी उपस्थिति के बारे में बताया गया है। नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यासों के ज़रिए नारी की वेदना, संत्रास, और पुरुषवादी मानसिकता से मुक्ति की बात कही है।नासिरा शर्मा की लेखनी में विचार, भाषा, संवेदना, और नारी विमर्श का उच्च समीक्षा दृष्टिकोण दिखता है।

नए तेवर, नई भाषा-शैली में लिखा नासिरा शर्मा का यह एक मार्मिक उपन्यास है, जो नई पीढ़ी के गहरे दुखों व तनावों से हमारा परिचय कराता है। अपनी कोशिशों से शताब्दियों को पार करते हुए इंसान ने इस दुनिया को न केवल रहने की हर सुविधा से सजाया बल्कि क्रान्ति चकाचौंध से भर दिया, मगर उसमें एक वर्ग ऐसा भी है जो संघर्षरत है और जिसका जीवन अंदर-बाहर दोनों स्तर पर नासूर बन चुका है। ऐसे इंसानों में सूर्यकांत भी है जो अपने कष्ट को कर्तव्य से दूर करने की लगन में यह बिल्कुल भूल चुका है कि प्रेम की भी जीवन में एक बड़ी भूमिका होती है। जिसकी कमी से बीमार पत्नी साधना मौत के अंधेरे में गुम होना चाहती है जबकि उसकी दोनों जवान होती बेटियाँ घुटन से भरे घर के इस नरक से रोशनी के दायरों को पकड़ने के लिए छटपटाती हैं।

'शब्द पखेरू' उपन्यास में यह बताया गया है कि कैसे इधर के दशक में युवा पीढ़ी ने इंटरनेट के एकांत को अपना अधिवास बना लिया है और दिन-रात ऑनलाइन रहने की व्याधियों का शिकार हो चली है। चैट बाक्स के उजाले में झूठी संवेदना के जाल में तथाकथित प्रेम संबंधों को बढ़ाते हुए किस तरह मनी ट्रैफिकिंग एवं मनी लॉन्डरिंग के अपराधपूर्ण, कपटपूर्ण कृत्यों का अंग बन रही है। इस पर यह उपन्यास एक उदाहरण के ज़रिए होशियार करता है। उपन्यास की पात्र शैलजा के ज़रिए आज के युवा किस तरह शॉर्टकट से पैसे कमाने के लोभ में साइबर क्राइम का शिकार हो रहे हैं, इस सच्चाई को सामने लाने का यत्न किया गया है।इसमें साइबर क्राइम को प्रमुख मुद्दे के रूप में उठाया गया है।

शब्द पखेरू यानि शब्दों की सच्चाई किस तरह उत्तरोत्तर हमारे बीच से लुप्त हो रही है, किस तरह नकली संवेदना और फरेब से लिपे-पुते चेहरे चैट बॉक्स में मुहब्बत की हलफ उठाते हुए युवतियों के जज्बात से खेलते हैं और उसे मनी ट्रैफिकिंग के जाल का हिस्सा बनाने की चेष्टा करते हैं, यह उपन्यास इसका उदाहरण है। उपन्यास की एक पात्र शैलजा तथाकथित आर्मी आफिसर की प्रायोजित मुहब्बत के जाल में फँस जाती है और एक दिन मनी ट्रैफिकिंग के मोड़ तक पहुँच जाती है। गनीमत यही कि उसे उसकी सहेली सादिया के चाचा नईम अपनी अनुभवी आंखों से भांप कर बचा लेते हैं। सच्चाई के उद्घाटित होते ही मुहब्बत में भीगे शब्दों के पखेरू उड़ चुके होते हैं।

उत्तराधुनिक नेटवर्क की समस्याओं में फँसे बिना सही रूप से नेटवर्क का उपयोग करते हुए आगे बढने की सूचनाएँ भी नईम चाचा द्वारा स्पष्ट की गयी है। पैसा कमाने के सारे आसान रास्ते चुनौत्तियों से भरे रहते हैं। उनमे कोई न कोई क्राइम छिपा रहता है। फ्रैंक जॉन द्वारा बिछाये गए जाल में शैलजा इसलिए नहीं फँसी कि उसने उसकी चुनौतियों को इंकार कर दिया। बाज़ार और तकनीक के इस विकसित हो रहे माहौल में शैलजा अपना मार्गदर्शक 'गूगल' को समझ लेती है और ग्रैंडपा के ज़रिए वह बेहतर दुनिया में सांस लेने की तमन्ना पाल लेती है। वह अपने परिवार को सुखमय जीवन देने की इच्छा में साइबर क्राइम में फँस जाती है।

नासिरा जी अपनी रचनाओं में केवल समस्याएँ ही नहीं उठातीं, उनके समाधान भी देती हैं। चाहे वह शाल्मली हो, ठीकरे की मंगनी, पारिजात या जीरो रोड। उनका कोई भी उपन्यास समाधानों के साथ खत्म होता है। इस उपन्यास में भी ऐसा होता है। कहानी सूर्यकांत वर्मा, पत्नी साधना,बेटियाँ मनीषा और शैलजा, घर के कामकाज देखने वाली कंचन और शैलजा की सहेली की है। पत्नी साधना बीमार हैं। पिता के रूप में आत्मविश्वास खो चुके सूर्यकांत उपचार में इतने त्रस्त हो चुके हैं कि उन्हें लगता है अब नौकरी से मुक्ति ले ली जाए ताकि पत्नी की सही देखभाल हो सके। पहले तो नर्सों के हवाले कर सूर्यकांत भी लगभग अपने दायित्व से निरपेक्ष-से होते जाते हैं पर धीरे-धीरे बेटियों के सहयोग से रास्ता सुगम होता है। नौकरी से इस्तीफे का पत्र लेकर बड़े अधिकारी से मिलते हैं तो वह सूर्यकांत को कर्तव्यों के प्रति फिर उन्मुख कर देता है कि इस समस्या का समाधान इस्तीफा नहीं, बल्कि हालात से मुठभेड़ है।यही होता भी है। नई पोस्टिंग पर सूर्यकांत के जाते ही बेटियां कहीं ज्यादा आत्मविश्वास के साथ घर और मां को संभाल लेती हैं। माँ की हालत में सुधार नज़र भी आता है। वे गांव भी हो आते हैं।

शब्द पखेरू की भाषा शैली में अनेक सूत्तियां हम देख सकते हैं, जिससे कथन की पुष्टि भी हो जाती है। यथा, "जीवन समय के फिसलने का नाम है शायद।"[5]

"बदन सोता जागता अपनी मौत मर रहा था"[6]

बहुत सारे कहावतों और लोकोत्तियों का प्रयोग भी इसमें हुआ है। जैसे "आ बैल मुझे मार"[7]

"चिड़ियाँ चुग गयी खेत"[8] आदि।

नासिराजी के उपन्यास सहज घरेलू जीवन की किस्सागोई है। छोटा परिवार पर माँ के बीमार होते ही जैसे पूरा घर व्याधि ग्रस्त हो उठता है। बाद में पिता का आत्मविश्वास लौटते ही जैसे अच्छे दिनों की आहट आने लगती है। बेशक वह अति आधुनिक प्रेम के रंग में भीग कर भी बदरंग रह गई थी। 'शब्द पखेरू' जहाँ संदेश देता है कि रोगी को दवाओं की कम, प्यार और देखभाल की ज़्यादा जरूरत होती है वहीं युवा पीढ़ी को नसीहत देता है कि 'पैसा मेहनत से कमाया जाता है, शार्टकट से नहीं।' 'शब्द पखेरू' भूमंडलीकरण की त्रासदी पर रचा गया है,जिसमे महानगरीय मध्यवर्गीय परिवार के चार सदस्यों की जीवन की विदाम्बनाएं चित्रित किया गया है।

सन्दर्भ सूची

1. शब्द पखेरू, नासिरा शर्मा, पृ.19 2. वही, पृ.सं 18
3. वही, पृ.सं 8 4. वही, पृ.सं 5
5. वही, पृ.सं 18 6. वही, पृ.सं 21
7. वही, पृ.सं 23 8. वही, पृ.सं 23

असोसिएट प्रोफेसर
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग एवं अनुसन्धान केन्द्र
महात्मा गान्धी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

अनामिका के उपन्यास 'तिनका तिनके पास' में अभिव्यक्त वेश्या जीवन

डॉ हेलन मेरी ए जे

आज के समाज के आगे एक गंभीर समस्या है वेश्यावृत्ति। हिन्दी उपन्यास आरंभ से लेकर इस समस्या पर विचार करता आ रहा है। आरंभिक तौर के उपन्यासों में वेश्या के प्रति सहानुभूति दर्शायी गयी। लेकिन समकालीन उपन्यास वेश्या जीवन को यथार्थवादी दृष्टि के साथ प्रस्तुत किया जाने लगा। वेश्याओं की सामाजिक, आर्थिक मानसिक राजनैतिक स्थितियों पर ध्यान रखते हुए उन्हें समाज की मुख्यधारा में लाने का प्रयत्न समकालीन हिन्दी उपन्यासों की देन है। इतना ही नहीं स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में वेश्याओं के प्रति हो रहे शोषण को पहचानने तथा प्रतिरोध जाहिर करने का साहस भी उठाया गया है ।

अनामिका समकालीन हिन्दी उपन्यास के सशक्त हस्ताक्षर है। अनामिका का सारा साहित्य नारी के हर तरह के शोषण का विरोध करता है। वर्ष 2008 में प्रकाशित 'तिनका तिनके पास' उपन्यास वेश्या जीवन की समस्याओं पर केन्द्रित एक चर्चित उपन्यास है।

मूल रूप से औरत को वेश्या बनाने के पीछे का मूख्य कारण आर्थिक विषमता है। अपने परिवार का परवरिश, अपने आपकी आर्थिक माँग इनके लिए औरत को अपने शरीर के साथ सौदा करना पडता है। पढी लिखी लडकियाँ भी बेकारी से त्रस्त हैं और पैसा कमाने के लिए मज़बूरन वेश्यावृत्ति को अपनाना पडता है।

'तिनका तिनके पास' उपन्यास में अनामिका तारा नामक पढ़ी, लिखी वेश्या की कशमकश भरे जीवन को सामने रखकर प्रस्तुत धंधे में लीन औरतों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करती हैं। उपन्यास की नायिका तारा एक वेश्या की बेटी है। परंतु उसकी माँ हमेशा से ही उसे इस कीचड भरी दुनिया से बचाए रखना चाहती थी। इसलिए उसने खुद देह बेचकर तारा को पढाया लिखाया। लेकिन माँ के बीमार होने पर तारा को कॉल गर्ल बनकर पैसा कमाना पडा ताकि उसके अलावा उसके पास और कोई चारा बचा ही नहीं था। तारा की परवरिश ऐसे माहौल में हुई कि कॉल गर्ल बनकर रैकट में काम करने से उसे ज़रा भी अपराध बोध महसूस नहीं हुआ। क्योंकि बचपन से तारा वेश्यागामी माँ को देखती आयी है। इसलिए वेश्यावृत्ति के प्रति उसके मन में कोई घृणित भावना नहीं है। वह उसे एक साधारण आमदनी कमानेवाले पेशे की तरह खुलकर अपनाती है। प्रस्तुत उपन्यास में नायिका तारा को संस्थागत रूप में कॉल गर्ल के पेशे को अपनाने का विस्तृत व्याख्यान दिया गया है। अमेरिका में सोशल एंथ्रोपोलजी में डॉक्टर के लिए चुनी गयी तारा के लिए स्कॉलरशिप बंद होने के कारण एक बार फिर 'पीच' नामक संस्था के माध्यम से कॉल गर्ल की नौकरी में पुनः सेवा करना पडा। इसका विस्तृत चित्रण उपन्यासकार इस प्रकार देती हैं- "पीच नाम की संस्था जिसने पढी-लिखी लड़कियों का विज्ञापन दिया था। यूनिवर्सिटी फैकल्टी, स्टाफ, ब्रोकर, बडे रॉक स्टार और वकील इसके मुवक्कील थे। जब कभी ये किसी मीटिंग या टूर में अपने शहर से बाहर आते थे, शाम काटने के लिए इन्हें लड़कियों की अच्छी कंपनी चाहिए। एक सिद्ध प्रोफेशनल की तरह हमें उनसे मिलना होता था। हमारी स्थिति मुफ्त में तरह-तरह के दैहिक संताप झेलनेवाली, वेटरेसेज और बेत-स्टाफ से तो बेहतर थी।"[1] सुन्दर पढ़ी-लिखी लड़कियों की मज़बूरी का फायदा उठाकर मुनाफा कमाना ऐसी कंपनियों का लक्ष्य है। समाज की उच्चतम श्रेणी में अपनी दमित कामवासनाओं से ग्रसित अनेक लोग हैं जो ऐसी कंपनियों के संपर्क से कॉल गर्ल की भूमिका का निर्वाह करती है। इज़्ज़तदार एवं शरीफ दिखनेवाले लोगों

की असलियत बहुत ही भयानक होती है। कॉल गर्ल्स का सहारा लेनेवाले इन अमीरों में ज़्यादातर लोगों को एक भरपूर सेक्स की अतृप्त खोज रहता है। तारा को पीच संस्था की मैडम की शक्ल देखने की इज़ाज़त बिलकुल नहीं थी। मैडम की कॉल ही उसे ग्राहकों के पता सूचित करती थी। 'मैडम की आवाज़ इतनी तटस्थ और शिष्ट थीं जितनी कि ईश्वर की हो सकती है। ठंडी मिठास के साथ उन्होंने समझाया: "यदि तुम्हें कुछ नहीं कहूँगी- लेकिन तुम ग्राहक चुराना मत।"

"ग्राहक चुराने का क्या मतलब?"

"अपना नंबर उनको देकर सीधा उनसे डील करना ही ग्राहक चुराना है। एजैंसी के ज़रिए ही ग्राहक तुमसे आएं यह एकदम ज़रूरी है। ... एक घंटे से ज़्यादा साथ रहना ज़रूरी नहीं। काम करो, सात डॉलर हमको दो और घर वापस जाओ। बाकी के सारे पैसे और बख्शीश भी तुम्हारी ही।"[2] यानी कंपनी के साथ रहकर काम के लिए जिन-जिन शर्ते कंपनी सामने रखती है उन सबका पालन करना ज़रूरी है। वरना अंजाम बहुत खतरनाक हो सकता है। अकेले ग्राहक पटाने में कंपनी को कोई मुनाफा नहीं हो सकता है। इसलिए जब कोई कॉल गर्ल कंपनी को नाराज़ करती है तो कंपनी उसे दरख्वास्त कर देती है। एक बार जब कोई स्त्री इस रैकट में शामिल हो जाती है तो रूप सौन्दर्य के आखिरी पड़ाव तक उसे ऐसे ही ग्राहकों को खुश करके कॉल गर्ल बनकर रहना पडता है, भले इस पेशे में उसे किसी भी तरह की प्रताडना को क्यों न भुगतना पडे । कॉल गर्ल के पास आनेवाले ग्राहक अमीर घराने के होते हैं। इसलिए उनके तौर-तरीके में भी ऐसी नसीहत देखना लाजमी है। कुछ ऐसे ही ग्राहक होते हैं जो ऊँचे खानदान के पढ़े लिखे शरीफ औलाद होने के बावजूद कॉलगर्ल्स के साथ बदसलूकी करते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में तारा को ऐसे हिंसक ग्राहकों के बलात्कार का शिकार होना पडा। 'खट-खट करता ड्राइंगरूम की सीढ़ियों से वह उतरी और इतनी ज़ोर से अचानक मेरा मुँह चूमा उसने कि मेरे होठ लहुलुहान हो गए। फिर उसने दीवार पर इतनी ज़ोर से धक्का देकर मुझे खींचा कि मेरी पीठ छिल-गयी, दुधु देखने ले-मैंने उसे धक्का देने की सोची तो वह एक महाक्रूर हँसी हँसकर बोला - "तेरी औकात ही क्या है ? रंडी? रंडी ही है न तू? चुपचाप मेरा कहा मान। इस प्रकार के आचरण को तारा पहली बार बर्दाश कर रही थी।"[3] अपने कॉलगर्ल के पेशे में पहली बार उसे किसी ग्राहक का बलात्कार का शिकार होना पडा था। उस ग्राहक द्वारा कुछ जबरदस्ती और शोषण के बारे में वह यूँ कहती है - "उसने मुझे थूरकर रख दिया। मेरे कपडे फाडे, एक बार अपने अस्त व्यस्त से गुदगुदे बिस्तर पर, फिर उससे नीचे लगातार मझे गेंद की तरह की कई फेंकें मारी। मेरे केश नोचे, उठा-उठाकर फेंका। मुझको फुटबॉल की तरह कई किकें मारी। मेरे केश नोचे, बटन तोडे, गाल काट खाए, मुझ पर थूका, जब भी प्रतिवाद में हाथ-पॉव चलाने था कुछ कहने को हुई उसने मुझे पशु की ताकत से भींचकर कहा - 'चुप रंडी।"[4] कॉल गर्ल्स की नौकरी करनेवाली तारा के साथ ऐसा जुल्म हुआ तो सोच लीजिए कि बलात्कार का शिकार बनी आम स्त्री के साथ आखिर क्या हश्र हो सकता है? क्या कोई भी स्त्री सुरक्षित है? यह मात्र एक सवाल बनकर रह गया है। ऐसा नहीं कि कॉल गर्ल है इसलिए उन्हें ग्राहकों द्वारा बॉक्सिंग बैग की तरह पीटने का अधिकार है। उन्हें भी स्वाभिमान है। भले ही वह पैसा लेकर धंधा करती है फिर भी मानवीय रूप से उन्हें चोट पहुँचना जुर्म ही है। कोई भी स्त्री वह वेश्या भी क्यों न हो जब कोई उसकी मर्जी के खिलाफ कुछ करता है तो उसे बलात्कार ही कहना पडता है।

गरीबी की पकड से आज़ाद होने के लिए ही औरतें मज़बूरन से वेश्यावृत्ति को अपनाती हैं। "तिनका तिनके पास' उपन्यास में तारा पैसे कमाने के लिए कॉल गर्स बन जाती है। उच्चस्तरीय वेश्या होने से उसकी रेट इतनी उँची भी है कि उसे आराम से अपनी ज़रूरतों को निपटाने में सुविधा होती थी। परंतु एजेंसी द्वारा ही उसे ग्राहक मिल जाते थे इसलिए आधा पैसा एजेंसी को देना ही पड़ता

था। "एजेंसी के ज़रिए ही ग्राहक तुमसे आएँ यह एकदम ज़रूरी है। एक घंटे से ज़्यादा साथ रहना ज़रूरी नहीं। काम करो, सात डॉलर हमको दो और घर वापस जाओ। बाकी के सारे पैसे और बख्शीस भी तुम्हारी ही।"[5] यानी तारा की रेट इतना ऊँचा है कि उसे एजेंसी से डालरें कमाने का मौका मिलता था। पढी-लिखी, सुशील युवती होने से उच्चस्तरीय ग्राहकों के साथ उसकी अच्छी बनती थी। इसलिए उसकी रेट भी काफी बढ़िया थी। इस प्रकार जिस्म बाज़ार में वेश्याओं के स्तर के हिसाब से रेट भी बदलती रहती है। अर्थ के क्षेत्र में हुई धीमी मंदी थी इन वेश्याओं के रेट पर ज़ोरदार असर डाल सकते हैं। इसलिए वेश्याओं के जीवन के सम्मुख हर दिन नई चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं।

एक स्त्री का वेश्या होना उसकी भावनाओं की मौत ही है। प्रस्तुत उपन्यास में तारा कॉल गर्ल बनते हुए अपने आपको संवेदनहीन बना देती है क्योंकि यदि उसे धंधे में जमे रहना है तो मानव से मशीन बनना ज़रूरी है। इस सच्चाई से तारा अच्छी तरह वाकिफ थी। इसलिए उसका कहना है कि - "कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि मैं बस उर्जा बोर्ड हूँ और तरह-तरह की आत्माएँ मुझपर उतरती हैं।"[6] इससे तारा की व्यथा से भली भाँति अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि किस तरह उसे हर ग्राहक के पास संवेदनशील होना पडता है। यदि उनमें इसकी क्षमता न रहेंगी तो उसे कॉलगर्ल की नौकरी को छोडना पडेगा ही। इसी प्रकार अपने पास आनेवाले हर एक व्यक्ति को एक ऊर्जा बोर्ड की तरह तारा बरदाश्त करती है। राहत की बात यह थी कि एक घंटे से ज़्यादा किसी भी ग्राहक को बरदाश्त नहीं करती थी। इसके अलावा अपने पास आनेवाले एक ग्राहक जो सोफ्टवेयर इंजिनीयर है उसके साथ रात बिताते-बिताते तारा कहती है कि -"उस रात मुझको एहसास हुआ कि मैं औरत नहीं हूँ एक तकिया हूँ, लेकिन यह एहसास मैंने शावर के नीचे से निकलते-निकलते बालों के पाई के साथ ही तौलिए के एक फर्शटे में झटक दिया।"[7] यही कॉल गर्ल बनकर वह अपने आपको संवेदनहीन बना रही है ताकि धंधे में कई प्रकार के ग्राहक होते हैं। सबका रवैया अलग-अलग होता है। कोई अच्छे से पेश आता है कोई दम तोड देता है। ऐसे में संभलकर रहना बहुत ज़रूरी होता है। यहाँ पर तारा अपने आपको तकिया बताकर इस बात की पुष्टि करती है कि देह- मंडी में मर्द औरत पर किस प्रकार हावी होता है। तारा समझती है कि नहाने से उसकी वह गन्दगी साफ हो जाएगी जिसे इसने एक घंटे से साँस रोककर बर्दाश्त किया है। यहाँ पर शवर करना अपने आपमें एक तसल्ली है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'तिनका तिनके पास' उपन्यास में वेश्यावृत्ति के कारणों के साथ-साथ उस समय की सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप उनके समाधान देने का प्रयास भी किया गया है। वेश्याएँ समाज का हिस्सा ज़रूर हैं परंतु वे अकेली हैं। अकेली स्त्री पर समाज वार करता है। उसे हर तरीके से पस्त करने की कोशिश करता रहता है। लेकिन 'तिनका तिनके पास' उपन्यास की नायिका तारा अकेले निडर होकर व्यवस्था के खिलाफ खड़ी हो जाती है। वेश्या जीवन में प्रकट इस नवीन कदम को शुभ संकेतक माना जा सकता है। इससे वेश्या जीवन पर सोचने के लिए समाज विवश हो जाए और वेश्यावृत्ति के दलदल में फँसी ऐसी स्त्रियों को आनादी की किरणें नसीब हो जाएँ।

संन्दर्भ ग्रन्थ

1. अनामिका -तिनका तिनके पास - वाणी प्रकाशन, पृ. 2008
2. वही - पृ. 135
3. वही - पृ. 119
4. वही - पृ. 193
5. वही - पृ. 157
6. वही - पृ. 128
7. वही - पृ. 161

असिस्टेंट प्रोफसर
सेंट आल्बेर्टस कॉलेज , एरणाकुलम

समकालीन उपन्यास : बदलते जीवन परिदृश्य

Lt.डॉ शबाना हबीब

शोध सार : उपन्यास एक ऐसा फलक है जिसमें जीवन के विभिन्न परिदृश्य दिखाई देते हैं। दो-तीन समकालीन उपन्यासों के माध्यम से जीवन के विभिन्न परिदृश्यों को दिखाने की कोशिश है। सुशीला टाकभौरे का उपन्यास 'नीला आकाश', नीलेश रघुवंशी का उपन्यास 'एक कस्बे के नोट्स', गिरिराज किशोर का उपन्यास 'स्वर्णमृग', शर्मिला बोहरा जलान का उपन्यास 'उन्नीसवीं बारिश' आदि उपन्यासों के आधार पर प्रस्तुत आलेख तैयार किया है। उपन्यासों के विषय को किसी एक कटघरे के अंतर्गत रखना मुश्किल है। वह समय-सापेक्ष होता है।

बीज शब्द- दलित जीवन, अंबेडकरवादी विचारधारा, कस्बा, ढ़ाबा, ग्लोबलेसेशन, इन्टेरनेट कामी वर्ग, विदेशी कंपनी, कठपुतली, पार्थक्य, साझा।

मूल आलेख : 2013 में प्रकाशित सुशीला टाकभौरे का अपन्यास है 'नीला आकाश' जो दलित जीवन का यथार्थ दस्तावेज है। वात्मीकी एवं मांग जाति के माध्यम से सामाजिक भेद-भाव, जातिगत असमानता, अस्पृश्यता, दलित जीवन की विभिन्न समस्याएँ, दलित जीवन में शिक्षा का महत्व, दलितों पर अंबेडकर विचारधारा का प्रभाव आदि को इसमें प्रस्तुत किया है। उपन्यास के प्रमुख पात्र आकाश और नीलिमा हैं, इन दोनों को केंद्र में रखकर उपन्यास की कथा आगे बढ़ती है। दोनों पात्रों का कथा में प्रवेश उपन्यास के मध्य में होता है। उपन्यास की पूर्व पीठिका में दलित जीवन की विभिन्न समस्याओं एवं असली संघर्ष को दिखाया है।

नीलिमा और आकाश दलित जाति में पैदा होने की वज़ह से दलितों का सामाजिक विकास और अस्पृश्यता से मुक्ति के लिए संघर्षरत रहते हैं। उपन्यास में 60 और 70 के दशक की सामाजिक दशा का उल्लेख है जो कि आज़ादी के बाद संविधान लागू होने के ठीक बाद का एक पड़ताली दस्तावेज़ के रूप में सामने आता है। जो प्रेमचंद के गाँव, दलित, मज़दूर या रेणु के जातिगत संघर्ष की सामजिक दशा से पृथक नहीं है। उपन्यास में 60-70 के दशक में भी भारतीय समाज संविधान के अनुसार नहीं बल्कि पुराने सामाजिक रीति-रिवाज़, जाति-व्यवस्था, रूढिवादिता, अशिक्षा, अस्पृश्यता, स्त्री-पुरुष असमानता जैसे अनेक कुरीतियों से जकड़ा हुआ दिखाया गया है।

उपन्यास की पूरी कथा में अंबेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव देख सकते हैं। कथा में कन्हान गाँव का का वर्णन है जो कि महाराष्ट्र का एक दलित गाँव है। पूरा गाँव जाति और वर्ग के अनुसार अलग-अलग मुहल्लों में बंटा है। ब्राह्मण, बनिया, तेली, कुनबी सबकी अलग बस्तियाँ हैं। इन सबकी बस्तियों से दूर, गाँव से बाहर, नाले के किनारे अछूत जाति के लोगों के घर हैं। सदियों से दलित वर्ग अस्पृश्यता की यातना भोग रहे हैं। इनमें विशेषकर मांग, मेहतर, वाल्मीकि और हरिजन जातियाँ हैं। नीलिमा के माध्यम से लेखिका पूछती है - "यदि वह नहीं पढ़ती तो क्या करती? जो काम उसकी जाति के लोग रोजगार के रूप में कर रहे हैं, वह भी वही काम करती कहीं बेठकर सूपा, डलिया, टोकना बना रही होती। नहीं तो अपनी बुआ लक्ष्मी और पर्वती की तरह कहीं झाड़ू पोछा लगाने का काम कर रही होती। कही बर्तन धोने का काम कर रही होती ! सीता और राधा की तरह अस्पताल में सफाई का काम कर रही होती।"[1] इस प्रकार वह यह सोच कर कांप जाती है। परन्तु वह इस जातिभेद से ऊपर उठ कर पढ़ती भी है और अपने जातीय के लोगों को पढ़ाती भी है। होटल से चाय पीते वक्त भी इन दलित लोगों के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया जाता है। उन्हें सिर्फ उन्हीं के कपों में चाय दी जाती है। और कुछ भी खाने की सामाग्री दूर से दे दी जाती है। अपमान के साथ

मिले चाय और नाश्ते की परी कीमत जैसे चकानी पड़ती है। पता नहीं कोन सा जुर्म कर दिया है इन लोगों ने। 'नीला आकाश' उपन्यास के अंश में भीकू जी जातिवादी लोगों से बहुत चिढ़ते है।

महार जाति के लोग अंबेदकरवादी विचारधारा से प्रेरणा पाकर जातीय कर्म छोड दिया, यानि कि मरे हुए जानवरों को फेंकने का काम। मांग और बसोड जाति का काम संगीत और वाद्य यंत्र बजाना है, इसके अलावा बांस के सूपा, डलिया, झलना, चटाई आदि बनाने का काम भी है। कर्म की दृष्टि से कोई भी गंदा काम न करने पर भी उन्हें अस्पृश्य माना जाता है। उच्च जाति के कलाकारों को अधिक मान-सम्मान, धन और गौरव प्राप्त है जबकि दलित अछूत कलाकारों की कला को निम्न दृष्टि से देखा जाता है। दलित होने से उनकी कला भी निम्न हो जाती है। उपन्यास में लेखिका ने दलित जातियों में जो आपसी भेदभाव है उसे दिखाया है। एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों को अपने से छोटा मानते हैं। वाल्मीकी मोहल्ले के लोग उपजीविका के लिए सुअर पालना, साफ सफाई करना, मज़दूरी आदि करने जाते थे। वे लोग सवर्णों के घरों में काम तो करते हैं फिर भी उन्हें पानी सवर्ण बस्ती के कुएं से, दूर खड़े रहकर मांगकर लाना पड़ता है। छुआछूत के कारण स्कूल में इन लोगों के बच्चों की भर्ती नहीं होती थी । 'जाति कभी नहीं जाती' कहकर लेखिका ने बडी व्यंजना प्रस्तुत की है। आज़ादी के बारह साल बाद भी भारत की जातीय भाव में बदलाव न देखकर लेखिका चिंतित है। संविधान में लागू कानून समाज में कभी लागू नहीं होते । उपन्यास में आगे अंबेडकरवादी विचारधारा के प्रभात में दलित सामाजिक जागृति को दिखाया गया है - "नीला आकाश उपन्यास के बारे में लेखिका का कथन समीचीन है - नीला आकाश उपन्यास को दलित एकता का आख्यान कहना मेरे लिए गर्व की बात होगी। इसमें नीलिमा और आकाश नई पीढ़ी की भूमिका निभाते दिखाई देते हैं। कोई भी लेखक और लेखिका अपने वास्तविक जीवन में जो चाहते हैं, वह किसी न किसी रूप में उजागर जरूर होता है। मैंने भी अपने वास्तविक जीवन में इसी रूप में देखना चाहा है। जैसा कि 'नीला आकाश' में चित्रित किया गया है।"[2]

2014 में प्रकाशित नीलेश रघुवंशी का उपन्यास है 'एक कस्बे के नोट्स'। नई कहानी के दौर में कस्बे कथा साहित्य का अभिन्न अंग बन गए। इसमें यह बरहमेश गंज कस्बे का चित्रण है। यह उनके अपने कस्बे बौसूदागंज का ही रचनात्मक अवतार है। कुंठित सामंतवादी और नवउपनिवेशवादी परिवेश में जीने के लिए जी जान से कोशिश करनेवालों की कहानी कहती है। कस्बों के करोडों लोगों की कहानी है यह। इसमें ग्यारह सदस्योंवाला निम्न मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण है। उपन्यास के प्रारंभ में नायक (पिता), नायिका (बेटी) इनका कोई खास व्यक्तित्व उभरकर सामने नहीं आता। लेकिन जैसे-जैसे उपन्यास आगे बढ़ता है हम पाते हैं कि ये दोनों सशक्त पात्र हैं। अन्यास के नाम से ज़ाहिर है कि ये छोटे-छोटे नोट्स से गठित है। बहुत सारे लेखकों ने 'पिता' के अनेक मायनों को हमारे सामने प्रस्तुत किया हैं इनमें नीलेश जी के 'पिता' का अपना एक अलग रंग है। दिन-रात ढ़ाबे चलाते हमेशा लुंगी में ही जीवन काटनेवाले पिता का रूप कभी भी आँखों से ओझल नहीं होता। जैसा हो वैसा ही रहेगा' वाली सोच। पिता सुबह से रात तक ढाबे में लगातार कामों में व्यस्त रहते हैं। भट्टी धधकाने से लेकर भोजन तैयार करने, बरतन मलने और ढ़ाबे के अल्लम गल्लम काम करते, अपने कपड़ों के बारे में लापरवाह बने रहने पर भी आधुनिकता और प्रगतिशील विचारों से ओतप्रोत व्यक्तिथे। पिता के विचारों में - "उनकी संतानों पर कोई बंदिश न लगे, लड़कियाँ जब तक चाहें पढें शादी से भी जरूरी है पढ़ाई। लेकिन... पर अंत में अपना कुछ भी सोचने, करते वे अपने मन की हैं।"[3] बेटियों के अपने-अपने सपने हैं।

अक्सर हमें ऐसे बहुत सारे ईमेल्स आते है कि आप करोडों रुपए जीत गए, फॉम भरेंगे तो तुरंत करोड पति बन जाएँगे, ऐसे। पढे-लिखे लोगों से लेकर अनपढ़ तक इसके चंगुल में फंस जाते हैं। ईमेल हॉक करना आज

सामान्य बात हो गई। इसके लिए प्रोफेशनल हॉकर्स होते हैं। लोग इन हॉकर्स का इस्तेमाल करते हैं। विदेशों में यह आम बात है। अमरिका और ब्रिटन,जैसे राज्यों के बड़ी बड़ी कंपनियों के नाम पर ईमेल आते हैं। उसमें जादूई भाषा का प्रयोग करते हैं। इसलिए इसे पढ़ते ही लोग इसे सच समझते हैं। एक बार इनकी बातों पर विश्वास कर लिया तो उससे छुटकारा पाना आसान नहीं होता। यह उपन्यास ऐसे एक आदमी की कथा है, जिसने ऐसे मनमोहक विज्ञापन या मेसेज पर विश्वास करके अपना सब कुछ गंवा देता है। वैश्वीकरण के समय यूरोप और अमरिका की मंदी ने व्यक्तिगत रूप से भी धन कमाने की पद्धतियाँ निकाली हैं। पहले हुकूमत की ताकत के बल पर हम लोगों से पैसा छीनकर ले जाते थे, अब लालच और लफडेबाजी से। आजकल साइबर क्राइम इतना बढ़ गया है कि एकाउंट नंबर पता करके बैंक से लोग ऑनलाइन ही रुपया निकाल लेते हैं। हमारा आकाउंट जिस बैंक में है इसी के एजेंट के रूप में कोई फ़ोन करके हमसे कॉड पूछते है। कॉड मिलते ही हमारे खाते से पैसा उनके खातों में जमा हो जाएँगे। हमारे खाते से पैसा निकल जाएँगे। इस उपन्यास के नायक मनमोहक के साथ ऐसा ही हुआ। वैश्वीकरण की भाषा भी अंग्रेजी है। फिल करने के लिए आने वाले फोम भी अंग्रेजी में है। फोम का नाम था पेमेंट प्रोसेसिंग फॉर्म। मानव मन की सोई पड़ी संवेदनाओं को जगाने का तरीका उन कंपनीवालों के पास है। बार-बार वे लोग ईमेल भेजते हैं। भरोसा जीतने के लिए उनके एक एजेंड फ़ोण भी करेंगे। जाने -अंजाने में उनकी मीठी-मीठी बातों में हम फँस जायेंगे। फिर प्रोसेसिंग चार्ज माँगते हैं। यदि हम मना करें तो हमारी उम्मीद जीतने लायक वाणी में फोन करके बात करेंगे नहीं तो ईमेल करेंगे। ऐसी बात हम किसी से भी शेयर करना नहीं चाहता क्योंकि हमारी जीत दूसरे न अपनाएँ। विदेशी कंपनियों द्वारा कठपुतली बनाने की साजिश कोसों पुराने काल से यहाँ चले आ रहे थे। अब वह वैश्वीकरण का चेहरा ओढ़कर हमारे सामने उपस्थित है इसी का खुला दस्तावेज़ है यह उपन्यास। इसमें सही क्या है, गलत क्या है, यह सोचने का समय तक नहीं देते। हम पूरी तरह उसमें विश्वास कर लेते हैं। इसी का चित्रण उपन्यास में देखिए- "वैश्वीकरण का यह खेल जिसका प्रकारांतर में मैं शिकार बना, गलत शिकार नहीं हिस्सा था, उसके लिए क्या म्यूर, क्या मिसेस शर्मा आदि ही जिम्मेदार हैं, या मैं, जिसने अपने को उस खेल का हिस्सा बनने दिया? क्या एक मिलियन पौंड कहीं थे या मैं रस्सी को साँप समझकर उसे पकड़ने दौड़ रहा था? क्योंकि दूसरों के दिखाने पर मैं रस्सी को उसी तरह देख रहा था जैसे वे दिखा रहे थे। भूमंडलीकरण का सबसे बड़ा चश्मा विज्ञापन ही है।"[6]

शर्मिला बोहरा जलान का नवीनतम उपन्यास है 'उन्नीसवीं बारिश'। उपन्यास की नायिका चारुलता उनतीस वर्ष की नवयौवना युवति है। जो सृष्टि की हर छोटी बडी चीज को बारीकी से अनुभव करती है और उसे ऐसे साथी की तलाश रहती है जिसके साथ वह इन अनुभवों को साझा कर सकें। उसका मन अत्यंत कोमल एवं जिज्ञासू है और अच्छे बुरे में पार्थक्य करने की शक्ति उसमें है। वह हिमांशु में अपना साथी तलाशने की कोशिश करती है पर असफल होती है। यह आज की नारी का उपन्यास है। वह किसी के लिए भी अपने स्व को नहीं छोड़ना चाहती चाहे वह हिमांशु हो या समरेश या स्वयं उसके पिता। उसने अपनी माँ के खालीपन को बचपन से ही देखते आयी है, इसी कारण जब पिता सेवानिवृत्त होकर घर आए तो वह उसे अपनाते नहीं, क्योंकि जल उस और माँ को पापा की सख्त जरूरत थी तब वह उसके पास नहीं था। चारुलता काम करके अपनी माँ की जरूरतों को पूरा करती थी। उनके होते हुए जिना किसी लड़के को वारिस बनाना चाहते है। माँ अपने भतीजे को गोद लेना चाहती हैं परन्तु पिता अपने भाई के लड़के दीपक को ही अपना वारिस घोषित करते हैं। चारुलता की माँ सबकुछ समझती है परंतु विद्रोह करने का साहस नहीं कर पाती क्योंकि ना तो वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है और ना ही उनकी मानसिक बुनावट इस प्रकार,की है। एक तरह से चारु अपनी माँ की, प्रतिक्रियावादी अभिव्यक्ति है। चारुलता और हिमांशु साथ-साथ होते हुए मन से साथ नहीं

है। अतः अलग हो जाते हैं। रक्तिमदा मेधावी जैसे सामाजिक कार्यकर्ता के माध्यम से लेखिका समाज के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत करना चाहती है। उन्होंने अपना जीवन हाशिए पर रहनेवाले पिछडे एवं वंचित लोगों के उत्थान केलिए न्योछावर कर दिया। जब व्यक्तिस्व से आगे बढेगा तभी देश और समाज केलिए कुछ कर पाएगा । एक बडा जीवन जी पाएगा।

उपन्यास के उत्तरार्द्ध में नीरू दीदी नामक पात्र के पत्रों के माध्यम से लेखिका ने जीवन के कुछ अहम मुद्दों पर प्रकाश डाला है जो बहुत ही प्रभावशाली एवं तार्किक है। साथ ही ये पत्र जीवन, समाज, धर्म और साहित्य के प्रति लेखिका के गहन चिंतन एवं संतुलित दृष्टिकोण को प्रकट करते हैं। नीरू दीदी कहती है - कवि को अपने कवि होने का पक्का आश्वासन अपने अंदर से ही मिलता है। कवि को अपनी लड़खड़ाती मगर अदम्य आस्था से ही प्रेरणा एवं शक्ति दोनों मिलती है। रंग बदलते कोलकता शहर का चित्रण बहुत ही सुन्दर तरीके से किया है - "यह कलकत्ता शहर हर रोज अपना स्प रंग बदलता। इन वर्षों में कई फ्लाईओवर बन गये हैं। यहाँ मेट्रो ट्रेन भी है। एक जगह से दूसरी जगह जाना बहुत आसान हो गया है। होटल, रेस्त्राँ व कॉफी कैफे डे के ताँते लगे हुए हैं। खाने-पीने के ढेरों व्यंजन । शॉपिंग मॉल और ढेर सारा सामान।"[7]

यह उपन्यास मूलतः स्वयं को तलाशने का उपन्यास है। मनुष्य चाहता कुछ और है, होता कुछ और। यह चाहने और होने के बीच की कशमकश इसमें है। यह एक तरफ जीवन के छिछलेपन और दूसरी तरफ उसमें उतरकर मिलनेवाली गहराई का उपन्यास है। उपन्यास में किसी विशेष घटना का उल्लेख नहीं है। ना ही किसी समस्या का समाधान प्रस्तुत है। पात्रों के जीवन में जो सामान्य घटनाएँ घटित हैं उससे उनके जीवन में पड़नेवाले प्रभाव एवं फलस्वरूप आनेवाले बदलाओं का वर्णन है।

कुल मिलाकर इन उपन्यासों को किसी एक कटघरे में रखना मुश्किल है। वह कभी मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ समझना होता है तो कभी जीवन दर्शन प्रस्तुत करता है। कभी सामाजिक विसंगतियों की बात करता है तो कभी व्यक्ति के अंतर्द्वंद्व को दर्शाता है। उपन्यास पढ़ते हुए पाठक आत्ममंथन करता चलता है और समाज को एक नई दृष्टि से देखने की कोशिश है, जो उपन्यास की सफलता है।

आधार ग्रंथ सूची

1. नीला आकाश-सुशीला टाकभौरे-प्रलेक प्रकाशन, मुंबई 2022
2. कस्बे के नोट्स - नीलेश रघुवंशी -राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2014
3. स्वर्णमृग-गिरिराज किशोर -राजपाल एंड संस-2012
4. उन्नीसवीं बारिश -शर्मिला बोहरा जालान - सेतु प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड - एटा -2022

सन्दर्भ सूची

1. 'नीला आकाश', सुशीला टाकभौरे - पृष्ठ संख्या 76)
2. https://hindi.newsclick.in/The-purpose-of-my-writing-is-basically-Dalit-and-women-discourse-Sushila-Takbhaure
3. कस्बे के नोट्स - नीलेश रघुवंशी - पृष्ठ सं 89
4. कस्बे के नोट्स - नीलेश रघुवंशी - पृष्ठ सं 77
5. स्वर्णमृग - गिरिराज किशोर - पृष्ठ सं 17
6. स्वर्णमृग - गिरिराज किशोर - पृष्ठ सं 17
7. उन्नीसवीं बारिश -शर्मिला बोहरा जालान- पृष्ठ सं 211

असिस्टेंट प्रोफेसर
राजकीय महिला महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम, केरल

"अपने अपने पिंजरे" में अभिव्यक्त दलित जीवन का यथार्थ

डॉ राजन टी के

दलित और दलित साहित्य के संबंध में मुख्यधारा समाज के बीच गभीर चर्चा हो गई है। यह साहित्य आज मुख्यधारा साहित्य का अंग बन गया है। कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, आलोचना, जैसी साहित्य की विभिन्न विधाओं में इसकी उपस्थिति दर्ज की गई है। दलित साहित्यकार अपने समाज के कसैले यथार्थ को पाठकों के सामने अभिव्यक्त करते हैं। वे हजारों सालों की गुलामीय व्यवस्था एवं शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाते हैं। वे अपनी अस्मिता को बनाए रखने और मानवोचित जीवन जीने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। दलित आत्मकथाओं में इन सब की अभिव्यक्ति हुई हैं। दलित समाज की पीड़ा, वेदना, दमन, मार-पीट, उत्पीड़न, विद्रोह, संघर्ष आदि की प्रस्तुति इन आत्मकथाओं में विद्यमान है। दलित साहित्यकार अपनी रचना में जातीय भेद -भाव, अस्पृश्यता, छुआछूत, वर्ण व्ययस्था, अंधविश्वास, शोषण, मान-सम्मान, आदि समस्याओं का उल्लेख करते हैं। मोहनदास नैमिष राय की आत्मकथा 'अपने अपने पिंजरे' दलित जीवन के इस यथार्थ को और उनके जीने के संघर्ष को पाठकों के सामने उभारता है।

भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्या जाति है। इसे तोड़े बिना भारतीय समाज की प्रगति संभव नहीं है। समकालीन दौर में यह समस्या और भी गंभीर रूप से बहस के केंद्र में है। दलित समाज और उनके संघर्ष इस बहस के मुख्य विषय हैं। नैमिष राय अपनी आत्मकथा में जाति की इस जटिल समस्या को अनावृत करने का प्रयास करता है। वे अपने समाज में व्याप्त अमानवीय व्ययस्था का विस्तृत वर्णन करते हैं। गाँव और शहर दोनों जातीयता से मुक्त नहीं है। कहा जाता है कि शहरों में जातीय भेद-भाव बहुत कम होता है। वहाँ सब लोग एक साथ जीते हैं। सवर्ण और अवर्ण के व्यवहारों में अलगाव की भावना नहीं है। लेकिन यह कोरी कल्पना मात्र है। वहाँ जाति के नाम पर ऊँच-नीच की भावनाएँ प्रचलित है। गाँव की तरह शहरों में दलितों की जीवन रीति में कोई फरक दिखाई नहीं देता। शहरों में दलितों की पहचान वे किस गली या मोहल्ले में रहते हैं इसके अनुसार होती है। नैमिश राय लिखते हैं जाति और वर्गों के खानों में पहले से ही बस्तियां बंटी थी। बस्तियों के चप्पे-चप्पे पर जातिगत नामों की छाप थी कुछ बस्तियाँ बाड़ों और पादों के नाम से जानी गयीं। जत्तीवाडा ,पौड़ी वाडा, छीपी वाडा, जाटवाडा, बनियावाडा आदि -आदि गलियों पर भी कहीं कहीं वैसी ही छाप रही। "नील की गली, पत्तेवाली गली सुनार गली, कसाइयोंवाली गली मेरे शहर के भीतर बने पुल तथा पुलियों पर भी जातियों की पहचान थी। लोद्धों वाला पुल, सैनी पुल,धीवरों का पुल इससे से अलग बेगम पुल, तथा खूनी पुल भी था शहर में गेट और दरवाज़े भी थे चमार गेट, दिल्ली गेट, शोहराब गेट, कंबोह गेट, बुढ़ाना गेट और सराय भी जैसे बनी सराय हर जाति और वर्ग के लोग अपने -अपने पहचान में सिमट हुए शहर धड़कता था पर अलग अलग स्वर में बस्तियाँ थिरकती ,नाचती थी ,अलग-अलग बोलियों में उन सबसे मिलकर बना यह शाहर"[1]

भारतीय समाज में व्याप्त जातीय भेद-भाव की समस्या को लेखक पूरी वास्तविकता के साथ उजागर करता है। दलित समाज किस गाँव में रहते हैं उस गाँव के नाम से उनकी पहचान होती हैं दलितों को किस प्रकार अपनी जाति से पहचान करते हैं इसका चित्र 'अपने अपने पिंजरे' में मोहनदास नैमीश राय प्रस्तुत करता है। "हमारी बस्ती भी शहर की अन्य बस्तियों की तरह थी बस्ती का नाम चमार गेट था फिर चमार दरवाज़ा हुआ जिसे लोग चमार दरवज्जा ही अधिक कहते बोलते थे बस्ती के सिरे पर एक बड़ा गेट था। पहले हमारी बस्ती शहर के भीतर एक कोने पर थी शाम होते होते दरवाज़े बंद कर दिए जाते थे इसी कारण बस्ती नाम चमार गेट पड़ा"[2]

जिस प्रकार सवर्ण दलितों को जाती के नाम पर मुख्यधारा से अलग रखने का प्रयास करता है उसका चित्र आत्मकथा में नैमिश राय प्रस्तुत करते हैं - "हमारी बस्ती के किनारे पर जहाँ सवर्णों की लक्ष्मण रेखा दलितों को अलग करती थी, बस्ती के बीच रेखा के उस पार एक मंदिर था मंदिर सवर्णों का था।"[3]

भूख की समस्या मानवीय जीवन की सबसे बडी समस्या है आर्थिक अभाव के कारण दलितों को अपने

जीवन में भर पेट भोजन खाने का अवसर नहीं मिला है दो जून की रोटटी के लिए उन्हें कठिन मेहनत करना पड़ता है इसी हालत में भरपेट भोजन मिलने के लिए अपने आस-पडोसे के घरों में या किसी जमीदार के यहाँ के शादी-ब्याह में भाग लेने से ही संभव है उन दिनों में दलित घरों के चेहरे खुशी से चमकने लगते थे यह सोच कर कि खाने को तो मिलेगा नैमिष राय आत्मकथा में गरीबी उस हालत की याद करते हुए लिखते हैं "हम उस दिन की कई-कई हफ्तों से प्रतीक्षा किया करते थे मैं माँ से बार बार पूछता-फलाने के घर पर ब्याह कब है? ठिमाके के यहाँ कब? तायी माँ मुझे जवाब देने से पहले अंगुलियों पर हिसाब लगाती पहले सप्ताह गिनती और फिर दिन।"[6]

गरीबी की ऐसी हालत में भर पेट भोजन की प्रतीक्षा करके बैठ दलित परिवार के बारे में नैमिष राय आगे लिखते हैं जिस दिन शादी -व्याह होता उस दिन श्याम होने से पहले कोई एक आदमी घर घर आकर ऊँची आवाज़ में नौत करता। हर दूसरे घर के आगे खड़ा हो वह अपनी बात को लंबी खींच कर कहता पंचो... घर.. .. सिर -से सबकी .. एक नौत .. .. है। कभी -कभी हमारी चूल्हे नौत होती। उस दिन तो और भी अधिक खुशी होती थी। तब घर में चूल्हा यहीं जलता था।"[7]

रोटी की दिक्कत से जिस प्रकार दलित समाज पीड़ित है उसी प्रकार कपड़े की भी इसका मूल कारण आर्थिक विपन्नता है। घर की आर्थिक स्थिति बिगड़ हो जाने की वजह से अच्छे कपड़े पहनने की सुविधा दलितों को नहीं है। आत्मकथा में नैमिशराय लिखते हैं "कभी कभी वापसी में गीले कपड़ों में ही लौटते थे गर्मियों के दिनों में घर घर तक आते जाते पानी में भीगे कपड़े हवा लगने पर सूख जाते थे कपड़ों के नाम पर में निक्कर ,बानियाँ में ही छ :किलोमीटेर को लौट-फेर कर आता था। मेरे साथी भी वही पहनते थे प्रैंट पहनना तब हमें कहाँ नजीब होता था अधिक से अधिक हाफ-पैंट पहनती थी प्राँव फिर भी नंगे होते थे"[8] समाज में शिक्षा की अहं भूमिका है। यह जनता के मन में नई चेतना जगाती है। शिक्षा समाज को प्रगति की ओर ले जाती है। इसलिए समाज के प्रत्येक वर्ग,वर्ण या जाति के लगों को शिक्षा अर्जित करने का मौका देना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। लेकिन भारत में सदियों से कुछ लोगों को शिक्षा से दूर रखा गया है। वर्ण -व्यवस्था एवं जातीय भेद-भाव इसका मुख्य कारण है। जाति के नाम पर होनेवाले अन्याय का चित्र लेखक अपनी रचना 'अपने अपने पिंजरे में' प्रस्तुत करते हैं निम्न जाति में जन्म लेने के कारण दलित छात्र अध्यापक के उपहास का पात्र बनते हैं। सभी के सामने हम मुर्गी बनाया जाता था मार पड़ती थी अलग दलित स्त्रियों के साथ अन्याय भारत में दलित स्त्रियाँ दोहरे जीवन जीने के लिए मजबूर हैं सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक और मानसिक तौर पर इस व्ययस्था को झेलती रहती है एक ओर भारत की पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था इसका मुख्य कारण है तो दूसरी ओर वर्ण और जाति व्यवस्था हैं इनकी वजह से दलित नारी की ज़िंदगी खराब हो जाती है वह गुलामीय जीवन जीने के लिए विवश हो रही है। गाँव और शहर में दलित स्त्री का कोई अधिकार नहीं है।

उसका कोई मान-सम्मान नहीं है। मोहनदास नैमिष राय का कथन है - "अधिकांश महिलाओं को इक्के में सुबह ही सुबह भेड़-बकरियों की तरह भरकर ले जाया जाता था। हमारी बस्ती में मुँह अंधेरे खाली इक्का आ जाता था। घोड़ी की लगाम पकड़े जिस पर तहमद बांधे कोई मुसलमान बैठा होता था। वह वहीं से आवाज़ लगाता था - अरी चलो-चलो री चमारियों,जल्दी करो, सुबै हो गई है।..इक्के पर बैठे मुसलमान एक-एक कर हाकिम की तरह उनकी गिनती करता"[9] यहाँ जानवरों के समान इनसे व्यवहार करता है। वे लोग इनके जाति नाम लेकर बुलाते हैं। इनकी ओर गालियाँ भी देती हैं।

सवर्ण लोग हमेशा दलित स्त्रियों से बुरा व्यवहार करते हैं। अधिकांश दलित स्त्रियाँ अपनी आजीविका चलाने के लिए ज़मींदारों के घर-ज़मीनों में काम करती हैं। कभी जंगलों में जाकर घास काटती हैं। इस प्रकार मजदूरी करते वक्त वे शोषण का शिकार बनी रही है। गाँवों में सवर्ण जमींदार वर्ग हमेशा दलित स्त्रियों के पीछे हैं। वे इसका बलात्कार करते हैं दलित स्त्री की इस त्रासद जीवन के बारे में अपने अपने पिंजरे में लेखक संकेत करता है - "उनमें से अधिकांश के साथ शोषण द्वारा जिस्म की भूख भी मिटने की अक्सर घटनाएँ रहती थीं जंगल, खेत, खलिहान, कोल्ड-स्टोरेज, बाग, बागीचे और ज़मींदार ,काश्तकारों के बड़े-बड़े मकान इन सबके चश्मदीद मूक गवाह थे "[10] दलित स्त्रियाँ अपने घर संभालने के लिए

और कोई रास्ता न होने के कारण सवर्ण जमींदार वर्गों के इन हरकतों को सहती हैं।

दलित विद्रोह : दलित अपने समाज की ओर होनेवाले अन्याय और अत्याचार के खिलाफ आवाज़ बुलंद करते हैं। उनके मन में उभरी इस विद्रोह की भावना सदियों से झेले गए दमन -उत्पीड़न के कारण हैं। शिक्षा अर्जित दलित समाज के मन में नयी चेतना उभर आई है ्र दलित समाज की इस नई जागृती का संकेत करते हुए श्री रजनी बाज़ारिया का कथन है- "जाति ही जहाँ मान -सम्मान और योग्यता का आधार हो सामाजिक श्रेष्ठता के लिए महत्वपूर्ण कारक हो ,वहाँ यह लड़ाई एक दिन में नहीं लड़ी जा सकती लगातार विरोध और संघर्ष की चेतना चाहिए"[11] आज़ादी के बाद भी दलित समाज के जीवन में कोई बदलाव नहीं आया है। अस्पृश्यता और ऊँच-नीच की भावना ने उन्हें समाज की मुख्यधारा से दूर रख दिया है। दलित समाज की शिक्षा अर्जित युवा पीढी गुलामी,जातीयता, शोषण जैसी सामाजिक अन्याय और अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाते हैं। वे समझ सकते हैं कि सदियों से चल रही यह प्रथा वास्तव मे सवर्णों का साजिश है। धार्मिक आचरणों और रूढ़ियों का विरोध करते हैं। हिन्दू धर्म के नाम पर होने वाले इस अमानवीयता के विरुद्ध नैमिश राय अपने पिता से प्रश्न उठाता है। मोहल्ले में फैले हिन्दू -मुसलमान दंगे का वर्णन करके दलित लोगों के प्रति अन्य लोगों की मानसिकता को नैमिशराय व्यक्त करता है। बाप और बेटे के बीच का संवाद इस प्रकार है- "बा,ये मुसलमानों को क्यों मारते हैं? क्योंकि वे हिन्दू हैं -बा का उत्तर था और हम कौन हैं? मेरा अगला सवाल था? हम चमार हैं बा बोला। पर क्या चमार हिन्दू नहीं होते? मैंने फिर पूछा था बा ने जवाब देने से पूर्व पल भर मेरी ओर देखा था, फिर कहा "चमार चमार होते हैं ना हिन्दू ना मुसलमान।"[12]

भारतीय सामाज अनेक प्रकार के अंधविश्वास से जटिल समाज है लोग पाप-पुण्य-, नरक-स्वर्ग, जादू -टोना, देवी-देवता आदि पर विश्वास रखते थे। सवर्ण लोग इन विश्वासों के नाम पर दलित समाज को गुलाम रखते थे। इसलिए पत्थरों से निर्मित इन मूर्तियों की निरर्थकता पर नैमिषराय विद्रोह करता है। लेखक प्रश्न करता है "बचपन से ही मुझे यह सवाल बार-बार परेशान करता था कि मंदिरों में मूर्तियों का औचित्य क्या है? ईंट ,गारा,बालू सीमेंट से बनाए गए मंदिर और उनमें पत्थरों को तराशकर बनायी गई रंग-बिरंगी मूर्तियाँ। इन मूर्तियों को रंग-बिरंगे महँगे रेशमी कपड़े पहनाए जाते थे। उन्हें नहलाया-धुलाया जाता था। उन मूर्तियों को दूध से नहलाया भी जाता था। हालाँकि जितने लोग मंदिर में आते थे ,अधिकांश के बदन पर सबुत कपड़े नहीं मिलते थे, न ही उनके बच्चों को दूध ही मयस्सर होता वे लोग उन्हीं पत्थर की मूर्तियों के सुबह-श्याम दर्शन करते ,उनकी आराधना करते ,और अपनी हैसियत के अनुसार पूजारी को दान-दक्षिणा भी देते।"[14] खाने के लिए अच्छा भोजन या पहनने के लिए अच्छा कपडा न मिलने पर भी लोग मंदिरों में जाकर पत्थरों से निर्मित मूर्तियों की पूजा-अर्चना करते हैं। लेकिन मंदिर या भगवान की चिंता लोगों को आत्मविश्वास नहीं देती। लोगों को अंधविश्वास के चंगुल में फंसे इस प्रकार की धार्मिक परंपरा के खिलाफ नैमिषराय आवाज़ उठाता है।

संक्षेप में दलित आत्मकथाएँ दलित जीवन का जीवंत दस्तावेज़ हैं। इसमें रचनाकार दलित जीवन की त्रासद स्थितियों को अभिव्यक्त करता है। यह सम्पूर्ण दलित समाज की व्यथा -कथा है। इसमे अपने समाज के प्रति दलितों की आकांक्षा है। अपने समाज के भविष्य का सपना है। इस साहित्य में पूरे दलित समाज की वेदना की अभिव्यक्ति हुई है साथ ही साथ दलित समाज के मन में नई चेतना जगाकर उन्हें मानवोचित जीवन जीने की प्रेरणा भी है।

सदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अपने अपने पिंचरे -भाग -1-पृ -12, मोहनदास नैमिषराय
2. वही - पृ -17
3 वही - पृ -27
4. वही -भाग -2 पृ -21
5. वही - पृ -68
6. वही - पृ -106
7. वही -पृ -106-107
8. वही-पृ-56
9. वही - पृ:82
10.वही - पृ:83
11. वहीं - अपेकक्षा -जुलाई -सितंबर-2003-पृ -163
12 अपने अपने पिंजरे पृ-50-51-भाग -1)
13-वही -पृ-50-51-भाग -1)
14. वही -पृ-31(भाग-2)

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
केरल विश्वविद्यालय

अल्पना मिश्र की कहानी 'उनकी व्यस्तता' में नारी जीवन यथार्थ

श्यामलतिका एस

आज के समय में नारी जीवन व उनकी समस्याओं के बारे में विचार करना बहुत ही प्रासंगिक है। समाज में नारी पर होनेवाले अत्याचारों की खबर दिन-ब-दिन बढ़ती चली जा रही है। समाचार पत्र या टी. वी चैनलों के समाचार बुलेटिनों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि आज का ज़माना ही ऐसा हो गया है कि नारी शोषण हर पल में यहाँ जारी है। कानून व दंड संहिता के रहते हुए भी उसकी परवाह किए बिना लोग नारी पर अत्याचार कर रहे हैं। समसामयिक समाज में बढ़नेवाली घरेलू हिंसा, बलात्कार, खून, नारी उत्पीड़न, दहेज हत्याएँ हमें इन बातों पर विचार करने के लिए विवश करते हैं। डॉ.ए.एन.अग्निहोत्री के अनुसार "शहरी और ग्रामीण भारत अर्थात इण्डिया बनाम भारत की महिलाओं का निजी जीवन व्यावहारिक तौर पर आज भी कठिनाइयों और समस्याओं से भरा हुआ है। इक्कीसवीं सदी में इसे एक विडंबना कहें या सामाजिक विवशता अथवा समाज और सत्ता की संकल्पहीनता, महिलाओं की स्थिति अर्थात् हमारी आधी आबादी अभी भी आशाओं और आश्वासनों पर टिकी है।"[1] इस प्रकार के माहौल में सामाजिक गतिविधियों का अंकन व विचार-विमर्श के ज़रिए समय-समय पर सामाजिक उद्धार का कार्य संपन्न करना सच्चे साहित्यकार का दायित्व है। हिंदी साहित्य के महिला कथाकारों में प्रमुख श्रीमती अल्पना मिश्र भी अपनी रचनाओं के ज़रिए समाज को सही दिशा दिलाने का प्रयत्न कर रही हैं।

नारी आज हर वक्त कई प्रकार की समस्याओं से गुज़र रही है। अपने ही घर में उसके अस्तित्व का हनन होता है। पुरुष सत्तात्मक समाज सदियों से नारी को अपने अनुकूल बनाने की जाल बिछाते रहते हैं। 'उनकी व्यस्तता' कहानी द्वारा श्रीमती अल्पना मिश्र नारी उत्पीड़न, घरेलू हिंसा, दहेज समस्या, नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण आदि बातों का जिक्र करते हुए इन सबके प्रति सोचने के लिए लोगों को प्रेरित करती हैं। भारतीय समाज में नारी जीवन की भाग्यरेखा है विवाह। विवाह ही वह घटक है जिस पर निर्भर रहती है नारी के जीवन। वैदिक काल से लेकर आज तक के नारी जीवन व उनकी स्थिति पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि नारी को पुरुष सत्तात्मक समाज द्वारा यह बात पहले से ही सिखाया जाता है कि पति सेवा ही उसका धर्म है, उसमें ही जीवन की सार्थकता है। प्रगतिशील विचारों के कारण कुछ लोगों के मन में थोड़ी-बहुत बदलाव तो आ गए हैं। लेकिन जहाँ सुधार की सख्त ज़रूरत थी वहाँ आज भी कोई सुधार नज़र नहीं आ रही है। विवाह के समय वधू को जो संपत्ति देने की प्रथा हमारे समाज में व्याप्त है, उसमें आज भी कोई खास परिवर्तन नहीं आया।

बेटी के जन्म लेते ही माँ- बाप उसकी शादी के लिए संपत्ति इकट्ठा करने में व्यस्त रहते हैं। क्योंकि वर पक्ष की माँग के अनुसार दहेज न देने पर बेटी के वैवाहिक जीवन में विसंगतियाँ उत्पन्न होने की संभावना है। आज दहेज के नाम पर लड़कियों की आत्महत्या व हत्या बढ़ रही है। ससुराल में उसे कई प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। प्रस्तुत कहानी में टी. वी के न्यूज़ चैनल में खबर आती है कि ससुरालवाले बहू को सात साल से एक कमरे में बंद करके उसकी सहज मौत की प्रतीक्षा कर रहे थे। लड़की के घरवालों को भी पता नहीं था कि अपनी बेटी ससुराल में तड़प- तड़पकर मर रही है और दुनियावालों को भी इसकी जानकारी नहीं थी "बात बहुत रहस्यमय तरीके से खुली थी, वरना कोई जान भी न पाता कि इस घर में, इस दरवाज़े के भीतर, सात साल से एक औरत ने सुबह का सूरज नहीं देखा है।"[2]

न्यूज़ चैनलों में आनेवाले इन खबरों व पत्नी की बातों को सुनकर सुदामाप्रसाद को अपनी बेटी शैलजा की भारी चिंता होने लगी। शैलजा जो शादी के पहले होशियार व साहसी लड़की थी। सुदामा प्रसाद और पत्नी बेटे को चाहते थे लेकिन उन्हें बेटी मिली, शैलजा। उसके बाद भी तीन

बेटियाँ आ गयीं, लेकिन ईश्वर ने उन्हें कभी बेटे से आशीश नहीं किया। आज भी देश के सर्वाधिक लोगों द्वारा बेटे की माँग होते हैं, बेटी की नहीं। बेटी को जन्म देनेवाली औरत को भी कई प्रकार के शोषण का शिकार होना पड़ता है। यही नारी जीवन की विड़ंबनामय स्थिति है। लोग बेटी की शादी की भारी रकम व बेटे की आमदनी व दहेज से मिलनेवाली रकम से तुलना करके बेटी को बोझ व बेटे को भाग्य समझते हैं। लेकिन ऐसे सोचनेवाले इस बात को भूल जाते हैं कि नारी के बिना इस पृथ्वी व मानवराशी का अस्तित्व ही नष्ट हो जाएगा।

बचपन में पिता शैलजा का साथ देते हुए उसकी बातों को मज़बूती देते थे। वे मन-ही-मन खुश भी थे कि उसकी लड़की किसी लड़के से कम नहीं। बेटे को न मिलने के गम को भी वे भूल जाते थे। वे अपनी पुत्री को पर्वत पुत्री की तरह बहादुर मानते थे। पास-पड़ोस के लोग तो लड़की की इस तरह के व्यवहार को स्वीकार नहीं कर सकते थे। क्योंकि समाज में नारी की जो मान्यता थी वह है सुशील,शांत,त्याग,क्षमा जैसे शब्दों का पर्याय। शैलजा उससे भिन्न थी, अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाली थी। शैलजा की माँ भी पति से बेटी की इन हरकतों को सुधारने के लिए शिकायत करती थी। क्योंकि लड़की को दूसरे घर में जाना है जहाँ उनको त्याग व क्षमा के पर्याय बनकर जीना है और सब सहने की आदत उसमें होनी ही चाहिए। यही ज़माने की रीति है। पत्नी की यह बात उन्हें बाद में समझ में आई जब शादी होते पाँच साल होने पर भी शैलजा सभी लड़कियों की तरह नहीं बनी। आजकल सुदामा प्रसाद शैलजा के ससुराल के मुश्किलों के बारे में व अपनी अनब्याही बेटियों के बारे में सोचकर व्यस्त रहते हैं।

कहानी में शैलजा की माँ पति की हर बात को माननेवाली आम घरेलू औरत है। अपनी बेटियों की बातों पर भी उसकी राय प्रकट करने का मौका पति नहीं देते हैं और वे सब जानते हुए भी कुछ कर न सकी। सुदामा प्रसाद अपनी सभी बेटियों के हाथ सौंपकर स्वस्थ रहना चाहते हैं, लेकित उनके जल्दबाज़ी में लेनेवाले इन्हीं निर्णयों के कारण ही वे हमेशा व्यस्त रहते हैं। असल में व्यस्तता नारी की होती है जो इस निर्णय के फल आजीवन भुगत रही है। माँ- बाप बचपन से जो प्यार व प्रगतिशील चिंताओं के साथ अपनी बेटियों का पालन- पोषण करते हैं, वही लोग शादी के बाद बेटी की बड़ी-सी-बड़ी विषमताओं को सुलझाने में असमर्थ होते हैं और बेटी को उसी नरक में यातना झेलने के लिए छोड़कर सब नियति मानकर व्यस्त रहते हैं। शैलजा को भी ससुराल से वापस लाने के लिए सुदामा प्रसाद सोचते हैं, लेकिन अपनी अनब्याही बेटियों के बारे में सोचकर ऐसा नहीं करते हैं और उनकी बात निपटा देने की बात सोचकर व्यस्त रहते हैं। सब लोग अपनी बेटियों के लिए कुछ करना चाहते हैं , लेकित कभी-कभी सामाजिक मर्यदाएँ या फिर पारिवारिक मुश्किलें उन्हें पीछे हटाते हैं।

कहानी के अंत में दिल्ली के सड़कों पर अर्धनग्न हालत में, शरीर पर कटे- फटे के निशान के साथ एक लड़की के भागने की खबर आती है जिसे देखकर शैलजा की माँ पुराने बक्स में पड़ी अपनी पूँजी लेकर दिल्ली जानेवाली बस पकड़ने के लिए दौड़ी। यानि कि वे अपनी सुप्तावस्था से बाहर आयी और अपनी बेटी के साथ देने का साहसपूर्ण निर्णय तक पहुँच भी गयी। कहानी इस मोड़ पर आकर खत्म होती है कि नारी में अपनी सदियों की कैद से मुक्ति पाने का साहस आ गयी है "ऐसी कितनी ही लड़कियाँ, नंगे होने को देख लिए जाने के डर से कैद से नहीं भाग पाई। ये भाग आई। इसने रास्ता खोल दिया।"[4] सचमुच रास्ता खुल गयी है और इन रास्तों पर मज़बूत कदम रखते हुए हमें आगे बढ़ना हैं।

संदर्भ

1. महिला सशक्तीकरण और कानून , डॉ.ए.एन. अग्निहोत्री, पृ. सं.33
2. कब्र भी कैद औ' ज़ंजीरें भी, अल्पना मिश्र, पृ. सं. 65
3. वहीं, पृ. सं. 75
4. वहीं, पृ. सं. 78.

मार्ग दर्शक : **डॉ गायत्री एन**
असोसिएट प्रोफेसर, महात्मागाँधी कॉलेज
तिरुवनंतपुरम

शोधछात्रा
हिंदी विभाग, महात्मा गाँधी कॉलेज
केशवदासपुरम, तिरुवनंतपुरम।

मलयालम फ़िल्मी गीत शाखा में पट्टम सनित्त का योगदान

डॉ बिनु डी

केरल ईश्वर का अपना देश प्राकृतिक सौंदर्य के लिए ही नहीं सांस्कृतिक विरासत के लिए भी मशहूर है।केरल की संस्कृति में कथकली, मोहिनीयाट्टम और गीतों का अपना स्थान है। संगीत केरल के लोगों के जीवन का अभिन्न अंग है। केरल सोपान संगीत और कर्नाटक संगीत के लिए विख्यात है।यहाँ प्रसिद्ध गायकों की संख्या भी कम नहीं है - षट्काल गोविंदमारार, चेंपै वैद्यनाथ भागवतर, के. वी. नारायण स्वामी, के. एस. नारायण स्वामी, एम. डी. रामनाथन, टी. एन. कृष्णन, एम. एस. गोपाल कृष्णन, टी. एस. मणि अय्यर, येशुदास आदि।

पहली मलयालम फीचर फिल्म विगथा कुमारन थी,जो जेसी डैनियल द्वारा निर्देशित और निर्मित एक मूक फिल्म थी। इसका निर्माण 1928 में शुरू हुआ और इसे 23 अक्तूबर 1930 को तिरुवनंतपुरम के कैपिटल थिएटर में रिलीज़ किया गया। मलयालम में पहली बोलती फिल्म बालन (1938) थी जिसका निर्देशन एस. नोटानी ने किया था।

मलयालम सिनेमा मॉलीवुड सिनेमा नाम से जाना जाता है।वैश्विक प्रशंसा हासिल करने वाली अन्य फिल्मों में चेम्मीन (1965) शामिल है, जिसे शिकागो अंतर्राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव में सर्टिफिकेट ऑफ मेरिट मिला और सर्वश्रेष्ठ छायांकन के लिए कान फिल्म महोत्सव में स्वर्ण पदक मिला। भारत में निर्मित पहली 3डी फिल्म माई डियर कुट्टिचाथन (1984) मलयालम में बनाई गई थी। मलयालम में निर्मित पहली सिनेमास्कोप फिल्म तच्चोली अंबु (1978) थी।

1947 तक ज़्यादातर मलयालम फ़िल्में तमिल निर्माताओं द्वारा बनाई जाती थीं, पी.जे चेरियन, जेसी डैनियल के बाद इस क्षेत्र में कदम रखने वाले पहले मलयाली निर्माता थे। पीजे चेरियन ने 1948 में जोसेफ चेरियन और बेबी जोसेफ,के साथ निर्मला का निर्माण किया। मलयालम सिनेमा और मलयालम फिल्म संगीत विकसित होने से पहले, मलयाली लोग तमिल और हिंदी फिल्म गीतों का उत्सुकता से अनुसरण करते थे। मलयालम फिल्म गीतों का इतिहास 1948 की फिल्म निर्मला से शुरू होता है जिसे कलाकार पी.जे चेरियन ने बनाया था जिन्होंने फिल्म में पहली बार पार्श्व गायन पेश किया था। फिल्म के संगीतकार पी.एस दिवाकर थे, और गीत पी. लीला, टी.के गोविंदराव, वासुदेव कुरुप, सी.के राघवन, सरोजिनी मेनन और विमला बी. वर्मा ने गाए थे, जिन्हें मलयालम सिनेमा की पहली पार्श्व गायिका होने का श्रेय दिया जाता है। पी.जे चेरियन ने निर्मला के द्वारा मलयालम सिनेमा में पार्श्व गायन की शुरुआत की। जी. शंकर कुरुप द्वारा लिखे गए फिल्मि के गीत लोकप्रिय हुए। उदया स्टुडियो की वेल्लिनक्षत्रम (1949) ऑडियो के साथ पूरी तरह से केरल में बनी पहली फिल्म थी।1950 के दशक के मध्य तक, मलयालम फिल्म संगीत उद्योग ने अपनी पहचान बनानी शुरू कर दी थी। इस सुधार का नेतृत्व संगीत निर्देशकों ब्रदर लक्ष्मणन,जी. देवराजन,वी. दक्षिणमूर्ति, एम.एस बाबूराज और के. राघवन के साथ-साथ गीतकार वायलार रामवर्मा,पी. भास्करन,ओ.एन.वी कुरुप और श्रीकुमारन तम्पी ने किया।उस समय के प्रमुख पार्श्व गायक कमुकरा पुरुषोत्तमन,के.पी उदयभानु, ए.एम राजा,पी. लीला,शान्ता पी. नायर,अयिरूर सदाशिवन,ललिता तम्पी, सी.एस राधादेवी, ए.के सुकुमारन,बी. वसंता,पी. सुशीला,पी. माधुरी और एस. जानकी थे । इसके बावजूद, इन गायकों को पूरे केरल में बहुत लोकप्रियता मिली और वे मलयालम संगीत के स्वर्ण युग (1960 से 1970) का हिस्सा थे।के.जे येशुदास ने मलयालम फिल्म संगीत उद्योग में वस्तुतः क्रांति ला दी, जिन्होंने 1961 में फिल्मी यात्रा की शुरुआत की और के.एस चित्रा के साथ सबसे लोकप्रिय मलयालम गायक बन गए।

गायकों की नयी पीढ़ी में सबसे प्रसिद्ध नाम है- पट्टम सनित्त। जो अपनी सुरीली आवाज़ से फिल्म पृष्ठभूमि संगीत के क्षेत्र में सफल हो गए हैं। वे सिनेमा संगीत के पितामह देवराजन के प्रिय शिष्यों में से एक हैं।वे एक बैंक में प्रबंधक के पद पर कार्यरत हैं। उनके माता-पिता सरोजिनी अम्मा और रामास्वामी हैं। पत्नी रतिका है और इकलौता बेटा,

अनूप सनित्त तिरुवनंतपुरम के मार इवानियोस कॉलेज में स्नातक प्रथम वर्ष का छात्र है।इटवनकोड टी.एन पद्मनाभन सनित्त के नाना हैं, वे एक प्रसिद्ध मूर्तिकार हैं, जिन्हें 1966 में भारत के राष्ट्रपति डॉ. एस राधाकृष्णन से राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था। दादाजी भी एक कलाकार थे जो राजदरबार को सजाते थे। माँ एक मशहूर संगीत परिवार की सदस्या हैं।

उन्होंने फिल्मी क्षेत्र में करीब 11 फिल्मों में गीत गाए हैं, उन गीतों की धुन से लोगों के दिलों में जगह बना ली है। फिल्म 'लव लैंड' का गाना 'मनास्सिन्टेयुळ्ळिलनिन्न...' माँ से प्यार करने वाला कोई भी व्यक्तिनहीं भूल सकता है। फिर सेवन कलर्स, न्यू लवस्टोरी और लेट मैरिज फिल्मों के गानों ने भी लोगों का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने एक हजार से अधिक गाने गाए हैं। इनमें ललित गीत, देशभक्ति गीत, हिंदू मुस्लिम ईसाई भक्तिगीत और जागरण गीत शामिल हैं। उन्होंने ओ.एन.वी.कुरु प द्वारा लिखित और मास्टर देवराजन द्वारा संगीत दी गई तरंगिनी के एल्बों में और 13वीं पार्टी कांग्रेस के लिए कैसेट में गीत गाया। जिसमें चेन्कोडी चेन्कोडी, लालसलाम सखाक्कले, कटलिनुमक्करे और अन्य जैसे गीत शामिल हैं।

उनको 1989 में, मलम्पुषा, पालक्काड़ में आयोजित राज्यस्तरीय युवजनोत्सव में ओ.एन.वी कुरुप द्वारा रचित और मास्टर देवराजन द्वारा संगीत दिए गए गीत के लिए प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। उन्होंने स्कूल, कॉलेज और राज्यस्तरीय प्रतियोगिताओं मे में कई पुरस्कार प्राप्त किए हैं। 2014 में शंकर महादेवन अकादमी द्वारा आयोजित अखिल भारतीय संगीत प्रतियोगिता में सनित्त के गायन का विशेष उल्लेख किया गया और उन्हें विजेता घोषित किया गया। उनको 2015 में सर्वश्रेष्ठ गायक के लिए लायन्स इंटरनेशनल पुरस्कार, 2018 में सर्वश्रेष्ठ गायक के लिए अभिनेता सुकुमारन मेमोरियल फिल्म पुरस्कार (फिल्मः लव लैंड। गीतः मनास्सिन्टेयुळ्ळिल निन्न) और 2019 में बालाभास्कर पुरस्कार, (समाज सेवा के लिए), 2022 बोधि पुरस्कार (संगीत में श्रेष्ठ योगदान के लिए) मिला है। उनको भारत सेवक समाज द्वारा भारत सेवक राष्ट्रीय पुरस्कार 2023 में प्राप्त हुआ। यह पुरस्कार सामाजिक और नशा विरोधी क्षेत्रों में उत्कृष्ट सेवा के लिए है। उनको 2023 में दुबाई ग्लोबल मीडिया द्वारा गोल्डन अचीवमेंट पुरस्कार मिला। यह पुरस्कार भी कला, संस्कृति और नशा विरोधी गतिविधियों के लिए दिया जाता है।

यह गायक सभी प्रशंसाओं को विनम्रतापूर्वक स्वीकार करते हुए करुणा, दया, सामाजिक दायित्व और संगीत के धागों को एक सूत्र में पिरोकर हमारे प्रेम का पात्र बन गया है।सनित्त तिरुवोणम, क्रिसमस, रमज़ान, अपना जन्मदिन, परिवार के अन्य सदस्यों का जन्मदिन और अन्य पारिवारिक उत्सव आसपास के गरीब लोगों के साथ मनाते हैं। ये मानवसेवी विशेष दिनों में अनाथालयों और निराश्रित गृहों के निवासियों के साथ रहते हैं। वे हर महीने में एक दिन श्री चित्रा अनाथालय, पेरूरकडा मानसिक स्वास्थ्य केंद्र, कैंसर केंद्र, पूजप्पुरा महिला मंदिरम, चेशायर होम और शहर के भीतर और बाहर के अन्य निराश्रित घरों में जाने में आनंद लेते हैं और वहाँ रहने वालों के साथ गाते हैं और उन्हें खुश करते हैं। इसलिए वे यहाँ के विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक संगठनों द्वारा आयोजित कार्यक्रमों के अतिथि भी हैं। इसके अलावा, ये पर्यावरण-प्रेमी गायक लोगों को ग्रामीण इलाकों की रक्षा करने की,पारिस्थितिक संतुलन वनाए रखने के बारे में जागरूक करने और संवेदनशील बनाने की भी कोशिश करते हैं।, हर साल पर्यावरण दिवस पर विभिन्न संगठनों के नेतृत्व में वृक्षारोपण किया जाता है और उसके संरक्षण पर भी विशेष ध्यान देता है।

पट्टम सनित्त देश और विदेश में 2,500 से अधिक मंच पर गीत गा चुके हैं। वे नियमित रूप से आकाशवाणी, दूरदर्शन और कई अन्य चैनलों में कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। पट्टम सनित्त अपनी सहज सुरीली आवाज़ को कायम रखते हुए संगीत पथ पर आगे बढ़ते रहते हैं। वे संगीत के माध्यम से जीवन के तनाव पर काबू पाते हैं। ये संगीत तपस्वी मलयाळम फिल्मी गीतों की दुनिया में अपना पद चिह्न छोड़ने की कोशिश में हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. संगीत विशारद-वसंत, 2015 संगीत कार्यालय, हाथरस
2. मलयाल सिनेमायुटे कथा - विजयकृष्णन 2017, पूर्णा पब्लिकेशन्स
3. Internet

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग,
सरकारी वनिता कॉलेज, तिरुवनंतपुरम।

"साहित्य में दलित चेतना : सुशीला टाकभौरे का योगदान"

ऋचा जांगड़े

सारांशः यह शोधपत्र सुशीला टाकभौरे की साहित्यिक कृतियों के माध्यम से दलित चेतना और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का विश्लेषण करता है। भारतीय समाज में जाति-आधारित भेदभाव की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में, दलित समुदाय अक्सर हाशिये पर रहा है। लेखिका सुशीला टाकभौरे ने अपनी लेखनी का उपयोग करते हुए इस समुदाय की आवाज़ को मुखर किया है, जिसमें दलितों की सामाजिक उन्नति, उनके संघर्ष और आकांक्षाओं को उजागर किया गया है। इस पत्र में, टाकभौरे की रचनाओं का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है जो दलित चेतना के विकास में उनकी भूमिका को स्पष्ट करता है। उनकी कृतियाँ दलित समुदाय के अनुभवों को व्यापक रूप से प्रकट करती हैं और इस तरह सामाजिक न्याय और समानता के मुद्दों को सामने लाती हैं। उनके साहित्य में दलितों की स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा के लिए उनकी लड़ाई विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जो भारतीय साहित्य में उनके योगदान को अनूठा बनाती है। अंततः, यह अध्ययन न केवल दलित चेतना के उद्घाटन पर प्रकाश डालता है बल्कि इसके माध्यम से समाज में चेतना और जागरूकता बढ़ाने के लिए साहित्य की क्षमता को भी स्थापित करता है।

बीज शब्दः दलित चेतना, सुशीला टाकभौरे, भारतीय साहित्य, दलित सशक्तीकरण, साहित्य में सामाजिक सुधार, समकालीन दलित लेखक।

परिचय : सुशीला टाकभौरे का कार्य दलित समुदाय के लिए एक प्रेरणा स्रोत के रूप में और भारतीय साहित्यिक दुनिया में एक महत्वपूर्ण योगदान के रूप में उभरता है।

दलित समुदाय, जो भारत के जाति-आधारित सामाजिक पदानुक्रम में ऐतिहासिक रूप से हाशिये पर रहा है, लंबे समय से व्यवस्थागत भेदभाव और दमन का सामना कर रहा है। जाति-आधारित असमानताओं को संबोधित करने के लिए विधिक और सामाजिक सुधारों के बावजूद, गहराई में जड़ें जमाए पूर्वाग्रह और संरचनात्मक बाधाएँ दलित अधिकारों और गरिमा की पूर्ण कल्पना को बाधित करती रही हैं। इस संदर्भ में, दलित चेतना को बढ़ावा देने और सामाजिक परिवर्तन को चलाने में साहित्य और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की भूमिका बढ़ती जा रही है।

सुशीला टाकभौरे, एक प्रमुख दलित लेखिका, हाशिये की आवाज़ के रूप में उभरी हैं, अपने साहित्यिक कार्यों का उपयोग करते हुए दलित समुदाय के संघर्षों, आकांक्षाओं, और लचीलेपन को प्रकाशित किया है। अपनी आत्मकथात्मक खातों और दलित अनुभवों के विषयगत अन्वेषण के माध्यम से, टाकभौरे आधुनिक भारत में दलितों द्वारा सामना किए गए सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक चुनौतियों का एक बहुआयामी चित्रण प्रदान करती हैं। उनकी लेखनी न केवल दलित आवाज़ों के लिए एक मंच के रूप में काम करती है, बल्कि जाति-आधारित भेदभाव और सामाजिक न्याय पर मुद्दों पर गहन चिंतन, वार्तालाप, और सामाजिक परिवर्तन की ओर प्रेरित करता है।

सुशीला टाकभौरे की साहित्यिक रचनाएँ एक अद्वितीय दृष्टि प्रदान करती हैं जो दलित समुदाय की गहरी जागरूकता को प्रकट करती हैं। यह जागरूकता मानव मन का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो व्यक्ति को उत्तेजित परिस्थितियों का सामना करने पर ध्यान केंद्रित करता है और उन्हें 'जागरूकता' के रूप में उत्पन्न होने वाली उत्तेजना से परिचित कराता है। ऐतिहासिक रूप से, दलितों और आदिवासी समुदायों ने शताब्दियों से उच्च वर्गों के शोषण का सामना किया है। हालांकि, आजकल की शिक्षा के प्रसार के साथ, दलित समुदाय अपने अधिकारों से अवगत हो रहा है और समाज में अपनी पहचान बना रहा है। इस परिवर्तन के साथ, दलितों की जागरूकता में वृद्धि हो रही है। प्रसिद्ध दलित कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित जागरूकता को अपने दृष्टिकोण का प्रतिबिम्ब माना है, जो दलित सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक धारणाओं को चुनौती देता है।

दलित जागरूकता का प्रसार विभिन्न हिंदी साहित्य के रूपों में होता है, जैसे कविता, कहानियाँ, नाटक, उपन्यास,

आत्मकथा, आदि। सिद्धनाथ, रैदास, कबीर, गुरु नानक, प्रेमचंद, निराला, नागार्जुन, और अन्यों के काम दलित जागरू कता को प्रसिद्ध करते हैं, विशेष रूप से समकालीन दलित लेखकों की रचनाओं में। दलित सुधारक, सामाजिक सुधारक, दलित क्रांतिकारी, और भारतीय संविधान के शिल्पकार, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर को इस प्रसार का महत्वपूर्ण योगदान दिया जा सकता है।

भारतीय समाज में दलित चेतनाः सुशीला टाकभौरे के विचार उनके समाज और विषय के प्रति उनकी अद्वितीय धारणा को प्रतिबिम्बित करते हैं। उन्होंने समाज के साथ और समाज के लिए लेखन की जिम्मेदारी को समझा है और उनकी रचनाओं में समाज के महत्वपूर्ण मुद्दों को उजागर किया है। उनकी रचनाओं में दलितों के बीच उत्थित जागरूकता एक मुख्य विषय है और उन्होंने इसे गहराई से विश्लेषण किया है। उन्होंने दलितों को शिक्षा के माध्यम से उनके अधिकारों की स्थापना के लिए प्रोत्साहित किया और इसे अपने लेखन के माध्यम से प्रशंसा की। इस प्रकार, उनकी रचनाओं में दलित जागरूकता के सिद्धांत को स्पष्ट रूप से प्रकट किया गया है।

दलित समाज का एक महत्वपूर्ण घटक है और उनके प्रति समाज के अन्य वर्गों की तरह सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव होता है। लेखिका ने विभिन्न धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, और सामाजिक क्षेत्रों में परिवर्तन के प्रभाव को समझाया है, जो उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से उजागर होता है।

भारतीय समाज में दलित वर्ग के व्यापक शोषण की पृष्ठभूमि में, जिसकी जड़ें मनुवादी परंपराओं में गहराई से जमी हुई हैं, यह मुद्दा सदियों से चला आ रहा है। वर्तमान में भी इसके प्रभाव बने हुए हैं, हालांकि शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति के कारण सवर्ण वर्ग का दलितों के प्रति नजरिए में सूक्ष्म परिवर्तन आया है। लेखिका यह दृढ़ विचार व्यक्त करती हैं कि प्रत्येक जाति के व्यक्तिको निर्बाध रूप से जीवन जीने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

लेखिका सुशीला टाकभौरे कहती हैं: "आत्म-सम्मान पाने के लिए अस्मिता की गहरी समझ अनिवार्य है,/मानवता के भान से ही समानता की भावना जागृत होती है।/यदि स्वतंत्रता नहीं है,तो जीवन की सार्थकता पर प्रश्न चिह्न लग जाता है।"[1]

कहानी संग्रह 'जरा समझो' के एक कथानक 'आतंक के साये में' से दलित समुदाय में जागी सामाजिक चेतना को उजागर किया गया है। इसमें नायिका शोला को ब्राह्मण वर्ग के प्रकाश द्वारा निरंतर अपमानित किया जाता है, जो विवाह प्रस्ताव रखकर और फिर अस्वीकार करके उसका मानसिक शोषण करता है। प्रकाश की असामयिक मृत्यु के पश्चात् शोला अपनी मुक्ति पाती है और वह कहती है, "मैंने दलित समाज की स्थिति और जातिवादी समाज-व्यवस्था के विरुद्ध सोचना और बहस करना शुरू कर दिया है।"[2]

'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास का दलित पात्र धीरज कुमार अपने जाति-परिचय को दरकिनार करते हुए, मानवता के आधार पर अपनी पहचान स्थापित करना चाहता है। वह सवर्ण उषा से विवाह करता है और अपने जाति-आधारित प्रश्नों पर उत्तर देते हुए कहता है, "मैं, धीरज कुमार 'जागरुक', अब सवर्णों की सेवा करने की अपने पूर्वजों की भूमिका को नहीं अपना सकता। मैं जाति के नाम पर न ब्राह्मण बनना चाहता हूँ और न ही शूद्र। मैं एक संघर्षशील मानव हूँ, जो सामाजिक समता के लिए लड़ रहा है।"[3]

उपन्यास 'वह लड़की' की मुख्य पात्र मोनी, अपनी जीवनी को सार्थक मानती है जब वह समाज के किसी व्यक्ति के काम आ सके। वह एक निम्न वर्ग की लड़की को गोद लेकर, उसे उच्च शिक्षा प्रदान करने और उसे समाज में एक सक्रिय नेता बनाने का निर्णय लेती है। वह कहती है, "मैंने निर्णय ले लिया है कि मैं एक स्लम बस्ती की, गरीब अभावग्रस्त परिवार की लड़की को गोद लेकर उसे अपनी बेटी की तरह पालूँगी और उसे उच्च शिक्षा दूंगी तथा उसे समाज में एक जागरूक और सक्षम नेता बनाऊँगी।"[4]

जातीय दृष्टिकोण से दलित चेतना के संदर्भ में यदि विचार करें तो प्राचीन काल में ग्रामीण भारत में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का कठोरता से पालन होता था, जिसके चलते दलित समुदाय मूलतः उच्च वर्गों के अधीन दासत्व की स्थिति में रहा करते थे। उस समय दलितों के जीवन में कोई स्पष्ट दिशा नहीं थी। हालांकि, आधुनिक युग में जहाँ भी जातिगत भेदभाव की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, वहाँ तत्काल इसका प्रतिवाद भी होता है। इसे दलित समुदाय में जातीय जागरूकता के रूप में पहचाना जा सकता है। आज दलित समुदाय के लोग पूछते हैं कि यदि ईश्वर के दरबार में सभी

मनुष्य एक समान हैं और सभी के लिए एक ही परमात्मा है, तो फिर जातिगत भेदभाव क्यों? इसी तरह के जातिगत चेतना से परिपूर्ण विचार सुशीला टाकभौरे ने अपने साहित्य में प्रस्तुत किए हैं।

सुशीला टाकभौरे के अनेक काव्यों में न्याय प्राप्ति की जद्दोजहद स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वे कहती हैं- "मेरी कविता कुदाल है, हथियार है, फटकार है, ललकार है दीन दुखियों के लिए न्याय की पुकार है।"[5] उनकी कृतियों में दलित वर्ग की स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान और सामाजिक स्थिति के परिवर्तन की भावना गहराई से निहित है। वे कहती हैं?

"सूरज नहीं सागर नहीं, आस्था का अस्तित्व केवल समूचा विश्व हममें है, समूची चेतना हममें है।"[6]

'नयी राह की खोज' कहानी में, निम्न जाति के रामचंद आर्थिक और सामाजिक बाधाओं के कारण अपने पुत्र को शिक्षित नहीं कर पाते हैं। इसके प्रतिक्रिया स्वरूप वे समाज के जागरूक व्यक्तियों के साथ मिलकर 'जागरूक' नामक संस्था की स्थापना करते हैं जिससे समाज की नई पीढ़ी को पढ़ाई और रोज़गार प्रदान किया जा सके। रामचंद का कहना है?

"क्या यह भी कोई जिंदगी है? हाथ बाँधे, सिर झुकाए, सबकी हाँ में हाँ मिलाते रहो... वही जानवरों जैसा जीवन, गंदगी को साफ करते रहो और गंदगी में पड़े रहो। यह कब तक चलेगा? कहीं न कहीं इसे रोकना होगा।"[7] 'नीला आकाश' उपन्यास में, दलित पीड़ित और शोषित वर्ग के नीलिमा और आकाश जैसे उच्चशिक्षित पात्रों के प्रयासों से अपने समाज की स्थिति में महत्वपूर्ण सुधार होता है। नीलिमा गाँव के दलित वयस्कों को शिक्षित करने की व्यवस्था करती है, जिससे उनकी सोच में बदलाव आता है। चन्दरी और बुधिया नामक महिला पात्र महिला मंडल की स्थापना कर महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करती हैं और कहती हैं? "हम सब वीर सिपाही हैं। अपने-अपने मोर्चे पर डटे हैं। हमें अपना संघर्ष जीतना है। समाज से जातिभेद और छुआछूत को मिटाना है। उँची शिक्षा, अच्छी नौकरी अपने बच्चों के लिए पाना है।"[8]

इस प्रकार, सुशीला टाकभौरे के साहित्य में दलित जातिगत चेतना और सामाजिक परिवर्तन की गहरी धारणाएँ प्रस्तुत की गई हैं, जो दलित समुदाय के अधिकार और सम्मान की मांग को उजागर करती हैं।

निष्कर्ष : सुशीला टाकभौरे की अधिकांश रचनाएँ दलित चेतना के प्रति समर्पित हैं, जो कि उनके स्वयं के अनुभवों से प्रेरित हैं। लेखिका यह मानती हैं कि जब तक व्यक्तिअपनी मौलिक आवश्यकताओं जैसे कि भोजन और भूख के बारे में सोचता है, तब तक वह निष्क्रिय और विवश रहता है। किन्तु जब वह इनसे परे जाकर अपनी आगामी पीढ़ियों के भविष्य के विषय में सोचता है, तब उसकी विवशता समाप्त होती है और वह क्रांतिकारी बन जाता है। ऐसी स्थिति में, विद्रोह की चिंगारी उसके हृदय में प्रज्वलित होने लगती है जो उसे प्रगति और परिवर्तन की ओर ले जाती है।

इस प्रकार, वे दलित चेतना को साहित्य में एक परिभाषित और गहराई से अनुभवजन्य विचार के रूप में प्रस्तुत करती हैं।उनकी आत्मकथा शिकंजे का दर्द में लेखिका ने अपने व्यक्तिगत दुख-दर्द के माध्यम से दलित समुदाय के जीवन के नारकीय पहलुओं को चित्रित किया है। उनकी प्रत्येक रचना उनके जीवन अनुभवों की प्रामाणिकता को दर्शाती है। आज जो सम्मान और मान्यता उन्हें समाज में प्राप्त है, वह उनके लेखन की देन है। लेखन के संदर्भ में उनका कथन है कि उनका लेखन न केवल उनकी अपनी जरूरत है बल्कि समाज की भी आवश्यकता है। उनका लेखन उन्हें न केवल उर्जा प्रदान करता है बल्कि उनकी पहचान को भी स्थापित करता है, उनके जीवन के उद्देश्य को निर्धारित करता है। अब यह उनकी खुशी का स्रोत बन गया है और समाज के प्रति उनके ऋण को चुकाने का माध्यम बन गया है।

संदर्भ

1. मेरे काव्य संग्रह, स्वाति बूंद और खारे मोती, सुशीला टाकभौरे, पृ. 33
2. जरा समझो, कहानी संग्रह, सुशीला टाकभौरे, पृ. 12
3. तुम्हें बदलना ही होगा, वही, पृ. 220
4. वह लड़की, वही, पृ. 168
5. मेरे काव्य संग्रह, स्वाति बूंद और खारे मोती, वही, पृ. 27
6. वही, पृ. 112
7. संघर्ष कहानी संग्रह, सुशीला टाकभौरे, पृ. 102
8. नीला आकाश, वही, पृ. 100-101

सहायक प्राध्यापक, शासकीय कन्या महाविद्यालय,
तखतपुर,जिला बिलासपुर छत्तीसगढ़

जयप्रकाश कर्दम और एस जोसफ की कविताओं में जातीयता

डॉ राधिका आर

जातीयता का मतलब है किसी जाति के आदर्श, गुण, मान्यता, विचारधारा आदि की सामूहिक संज्ञा। जाति व्यवस्था के प्रभाव ने हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध और जैन परंपराओं में लोगों को प्रभावित किया। ऐसा अनुमान है कि भारत में तीन हज़ार जनजातियाँ और उनकी हज़ारों उपजातियाँ हैं परंपरा से चली आ रही वर्णव्यवस्था में आज कई बदलाव आए हुए हैं।

जातीयता को मिटाने के लिए सामाजिक सुधार की आवश्यकता है। दलित कविता साहित्य के सशक्त कवि डॉ.जयप्रकाश कर्दम के कविता संग्रह में जातीयता की सटीक अभिव्यक्ति हुई है। आपने तीनों कविता संग्रहों में जातिभेद और उससे जुड़ी समस्याओं की चर्चा की है। जातीय भेदभाव के संबंध में डॉ.देवेश ठाकूरजी का कहना है कि "एक ओर राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित भारतीय समाज एक स्वर में अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ था और दूसरी ओर स्वयं उसमें नगर हीं नहीं ग्राम्य और आंचलिक स्तर पर भी जातिवाद का विकास पा रहा था, जिससे व्यक्ति व्यक्ति के बीच की खाई गहरी हो रही थी और व्यक्ति समाज जातिगत आधार पर अलग-अलग समूहों में विभाजित और विच्छिन्न होकर परस्पर द्वेष, ईर्ष्या और शत्रुता के भाव को बढ़ाता हुआ राष्ट्रीय शक्ति एकता और उदात्त मानवीयता के आदर्शों को धूमिल कर रहा था।"[1] प्रत्येक जाति स्वयं श्रेष्ठ मानने के कारण जातिभेद और भी सशक्त हो रहा था। कर्दमजी, अपनी कविताओं के माध्यम से इस भेदभाव को हटाना चाहते हैं। प्रगति के राह दर्शानेवाले अध्यापक वर्ग भी कभी जातीय संकीर्णता में फँस जाते हैं। 'वर्णवाद का पहाड़' नामक कर्दमजी की कविता की विषयवस्तु भी इससे संबंधित है। ज्ञानी व सर्वगुणी गुरु वर अपने पीने के पानी से अवर्ण छात्र को दूर रखते हैं। इस प्रवृत्ति से छुआछूत की समस्या हमारे सामने उपस्थित होती है। समता के मार्ग पर बच्चों को चलानेवाला अध्यापक ही उन्हें जाति के आधार पर दूर हटा देते हैं।

"तुमने सुनाई हमें/ प्रेम की कहानियाँ/ सिखाया भाईचारे का सबक/ जगाए तुमने/ राष्ट्रीयता के भाव भी/ हमारे भीतर/ लेकिन नहीं चूक पाए तुम/ पढ़ाने से वर्णवाद का पहाड़।"[2]

समाज में जातिभेद के कारण लोग दो वर्गों में बाँटे गए कि 'सवर्ण' और 'अवर्ण'। सब कहीं यह भेदभाव भी दिखाई देता है। अवर्ण जनता पर सवर्ण का आधिपत्य भी तय किया गया था। उसकी दासता स्वीकार करना पड़ा। कविता के माध्यम से कर्दमजी इस प्रवृत्ति का खण्डन करते हुए बताते हैं कि, वे आगे यह तिरस्कार सह नहीं सकते। इसके विरुद्ध आवाज़ उठाने की प्रेरणा कवि देते रहते हैं- "व्यर्थ है संसद और संविधान/ नहीं चाहिए उसे/ नीति और धर्म की शिक्षा/ नहीं चाहिए आध्यात्म का ज्ञान/ उसे चाहिए रोटी और सम्मान।"[3]

'अस्वीकृति' कविता के 'सिलिया' नामक पात्र के ज़रिए आप संपूर्ण भारतीय नारियों को चेतावनी देते हैं कि, प्रेम के नाम पर होनेवाले अत्याचार के छल में नहीं फँसें । शायद किसी सवर्ण लड़का किसी अवर्ण लड़की से शादी करेगा तो भी उसे पर्याप्त स्थान प्राप्त नहीं होता। उसे अपनी ओर किए जाने वाले अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ उठाने का अवसर भी निषिद्ध होगा।

"उसके घर में तुझे/ वह स्थान नहीं मिल जाएगा/ जो किसी ब्राह्मणी को मिला/ और तू भी जिसकी हकदार है/ मालकिन होकर भी उसके घर में तेरी हैसियत/ दासी या नौकरानी से ज्यादा नहीं बन पाएगी।"[4]

सत्तावादी और शासक वर्ग अपने स्वार्थ की उपलब्धि के लिए जाति के नाम पर जनता को भिन्न कर रहे हैं। 'भारत' कविता में कर्दमजी ने इस बात की अभिव्यक्ति दी है। लोगों के बीच एकता स्थापित करने से सत्तावादी शासक वर्ग का लक्ष्य पूर्ण न हो जाएगा। इसलिए जानबूझकर जाति व्यवस्था को समाज में पनपने दे रहे हैं। "अपनी सत्ता साम्राज्य को/ सुरक्षित रखने के लिए/ मिटाएँगे वे मुझे ही/ ज़िंदा रखेंगे वे वर्ण और जाति/ वर्णभेद और सांप्रदायिकता।"[5]

जातीयता का स्पष्ट विवेचन करते हुए 'बौने' कविता

के ज़रिए कवि इस बात का उद्घाटन कर रहे हैं कि, क्यों लोगों को अस्पृश्य कहा जाता है? वयों उसे अछूत माने जाते हैं? अपनी तीव्र प्रतिक्रिया की अभिव्यक्तिदेते हुए वे कहते हैं- "मुझे कहा गया है अवर्ण/ ताकि मैं/ तुम्हारी वर्ण शुचिता को/ सम्मान करता रहूँ/घोषित किया गया अस्पृश्य/ ताकि मैं तुम्हारे साथ/ घुल -मिला न सकूँ/ पुकारा गया मुझे हरिजन/ ताकि सदैव/ दीनता से दबा रहूँ।"[6] 'भारतीय चिंतन की गाड़ी' शीर्षक से भारत की परंपरागत जाति चिंता की ओर कवि इशारा कर रहा है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी लोकतंत्र भारत, जाति से मुक्त नहीं हुआ है।

"लोकतंत्र की धुरी पर चलनेवाली/ भारतीय चिंतन की यह गाड़ी/ इक्कीसवीं सदी में भी/ जाति के स्टेशन से बचकर निकलती है।"[7] बनारस को ब्राह्मणवाद का केंद्र मानते हैं। वर्ण व्यवस्था पर तीखा तिरस्कार करने वाले कर्दमजी की कविता है 'मैं बनारस जाऊँगा'। ब्राह्मणवादी व्यवस्था का खोखलापन उजागर करते हुए कवि कहते हैं -'वहाँ ब्राह्मणवाद का गढ़ है/ एक से बढ़कर एक सनातनी कट्टर और क्रूर लोग मिलेंगे/ जातिभेद और धुआछूत में डुबे पाए/ पानी को धो धोकर पीनेवाले। 8 कर्दमजी मानते हैं कि दुनिया में सब कहीं जाति के नाम पर अत्याचार होते रहते हैं। शांति और अहिंसा की गलि में अब अशांति और हिंसा रहती है। जाति के नाम पर एक दूसरे से बात भी नहीं होती। हवेली के बगल में रहनेवाली झोंपड़ियों का विनाश हुआ करता है।

"जाति के जंगलों में आग ऐसी लगी है/ आदमी नाम की अब कोई जाति होती नहीं है।"[9] सबलोग कहते हैं कि दुनिया में सिर्फ एक ही जाति है- 'इनसान'। सिर्फ एक ही भावना है 'इनसानियत' । लेकिन वास्तविकता इसके विपरीत है। सदियों से जाति का विष पीनेवाला दलित आज इनसानियत के लिए पूर्ण रूप से हकदार नहीं बने हैं।

"लूटती रहेंगी अस्मतें मरते रहेंगे लोग/ जबतक रहेगी हाथ में इन नाजियों के डर/ पतित तिरस्कृत रहेंगे शोषित, नीच अछूत/ चलता रहेगा जब तक यहाँ जातियों का ज़ोर।"[10]

मलयालम साहित्य के प्रमुख दलित कवि श्री.एस.जोसफ ने 'कस्त्ता कल्लू' (काला पत्थर) कविता में काले रंग को प्रतीक के रूप में चित्रित करते हुए केरल की जातिवादी प्रवृत्ति का उद्घाटन किया है। कविता के माध्यम से वास्तविक जातिव्यवस्था की अभिव्यक्ति उन्होंने की है। कर्दमजी कृत 'अस्वीकृति' कविता के समान अन्तर्जातीय विवाह एवं प्रेम संबंध की समस्या को उजागर करनेवाली जोसफजी की कविता है 'कस्त्ता कुञ्चुम काक्कयुम' (काला बच्चा और कौआ)। इसमें जातीयता की प्रवृत्ति दर्शनीय है। कविता की दो पंक्तियों में ही सारी बातों का समावेश हुई है। "वेलुत्ता पेणकुट्टिए स्नेहिच्चु/ अवलिल ओरू कस्त्ता कुंञ्चुण्डायी।"[11] (आशय : अन्तर्जातीय प्रेम संबंध से जन्म लेने वाला चित्र प्रस्तुत है।)

चण्डालन' (चण्डाल) कविता में एक निस्सहाय निम्न जाति के आदमी की विरूपता का चित्रण किया गया है। उसे तिरस्कार करने वाले समाज का थथार्थ चित्रण भी कविता में मिलती है। रास्ते से होकर निकलने वाले लोग उसे आपस पाने पर भयभीत होते हैं। वे उससे घृणा करते हैं, क्योंकि उसका रूप उतना ही घटा है। "कस्ब्बालिच्चा उडलुम/ कालिल मुरिवुम पषुप्पुमाई।"[12] (आशय : पंक्तियों में उस दलित आदमी की विरूपता का चित्रण है, जिसका चेहरा थका हुआ और पैरों में पीब है।)

जातीयता से संबंधित एक पुरातन प्रथा है 'छुआछूत' की समस्या। नीच जाति के लोग अपने घर में कुए का निर्माण नहीं कर सकते थे। इसलिए उन्हें दूसरों के घर से पानी लेना पड़ता है। मशहूर कहानीकार प्रेमचंद की कहानी 'ठाकूर का कुआँ' में इस समस्या का खुला चित्रण हमने देखा है। 'वेल्लम' (पानी) कविता में जोसफजी ने प्रस्तुत समस्या का चित्र खींचा है- "अवर मुट्टत्तु निन्नु तोट्टियिल वेल्लम कोस्म/ञड्ङलकु ताषे निन्नु कवुडुंमग पालयिल कोराम।"[13]

(आशय : पुराने ज़माने में सवर्ण अपने आँगन में खड़े होकर कुए से बाल्टी में पानी लेते थे, लेकिन अवर्ण को यह अधिकार निषिद्ध था। पंक्तियों में पानी की समस्या व्यक्त होती है।)

जोसफजी का जन्म एक निम्न जाति के परिवार में हुआ था। कॉलेज में पढ़ते समय उनका अपना एक सवर्ण सहेली रही जो कवि की जाति से अनजान थी। एक दिन अचानक ऐडेन्टिटीकार्ट के माध्यम से कवि की जाति

पहचानती है तो रूढ जाती हैं। ऐडेन्टिटीकार्ड'(पहचान पत्र) कविता के माध्यम से शिक्षित युवा समाज में होने वाले जातीय संकीर्णता की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। "ञान कण्डु कार्ट तन्निट्टवल परन्ञु/ चुवन्ना पेना कोण्डतिल कुरिच्चिट्टुण्डल्लो स्टैपन्ड वाङिया कणक्कु।"[14] (आशय : पंक्तियों में जोसफजी से उनकी सहेली की बातचीत दर्शाया गया है कि, ऐडेन्टिटीकार्ड से कवि की जाति व्यक्त हुई है)

'जयिल'(जेल) कविता में जाति को जेल के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उस जेल में कई कमरे होंगे, जैसे 'धर्म', 'जाति' और 'रंग'। करूप्पु' (कालापन) कविता में रंग के नाम पर बँटे निम्न जाति की अन्य लोगों से तुलना की है। "मनुष्यन्डे तोलि करूप्पिने पदवी इल्लातुल्लू/ तोली वेलुप्पिने पदवियुल्लू/ एन्ताणु तोली वेलुप्पु?/ करूप्पिल चविट्टी निलक्कुन्ना ओरू निरम अल्ले?/ वेलुपिन्डे अडियिल करूप्पु/ पतियिरिक्कुन्नू एन्नुम परयाम।"[15] (आशय : पंक्तियों में जाति' को 'रंग' का रूप देकर सवर्ण को 'गोरा' और अवर्ण को 'काला' बताते हुए, दोनों की तुलना की गई है।)

'निरम' कविता में जातीय भेदभाव का बयान करते हुए, रिश्तों के बीच बाधा डालने वाली जाति को 'बिल्ली' से तुलना की गई है। "वेलुत्ता निरमुल्लवल/ करूत्तवनाया एन्नोटोप्पम नटक्कान वन्नु/ अप्पोल मुतल अवलुम नोट्टपुल्लियायी।"[16] (आशय : पंक्तियों से कवि यह बताना चाहते हैं कि अवर्ण से जुड़नेवाले स्वर्ण को भी समाज गुनहकार मानते हैं।)

जोसफजी 'अरम' (पौना) कविता के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि लोगों की परंपरागत जातिवादी मानसिकता उनकी मृत्यु से भी नहीं हिलनेवाली है। कविता में जोसफजी ने अपने अवर्ण मज़दूर चाचा का जीवन चित्रित किया है जिन्होंने घर-घर जाकर टोकरी की बिक्री करते थे। सवर्ण घर में उनका अच्छा संबंध रहा, लेकिन उनकी मृत्यु पर कोई सवर्ण उपस्थित न रहा। "अद्देहम मरिच्चप्पोल स्वजातिक्कार मात्रमे/ शवमडक्किकनुण्डायिरुम्बुल्लू/ वलिया वीट्टीले पेण्णुङ्ङल/ मतिलिनु मरञ्ञु निन्नु शवम पोकुन्नतु कण्डु।"[17] (आशयः पंक्तियों में जोसफजी के चाचा की मृत्यु दर्शायी गई है, जहाँ केवल अवर्ण ही उपस्थित रहे। बड़े घर की सवर्ण महिलाओं ने दीवार के पीछे खड़े होकर छिपकर लाश को देखा।)

कस्त्ता कल्लु' (काला पत्थर) कविता में निम्न जाति ही 'काला पत्थर' के रूप में प्रस्तुत किया है। दुःख एवं पीडा को सरल मानते हुए, काला पत्थर सदा ज़मीन पर शांत भाव से स्थित है। इसलिए कविता में इसे 'कस्त्तवण्डे करुप्पुल्ला कल्लु"[18] (काला आदमी का जैसा काला पत्थर) कहा गया है। 'ओरु कण्डुमुट्टल (एक मिलन) कविता, केरल की जातिव्यवस्था को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करनेवाली है। कवि का मिलन एक सवर्ण वृद्ध से हुआ है। 'ग्रूप फोटो' (समूह चित्र) कविता में कवि एक अवर्ण युवक की शंका, डर और ग्लानि प्रस्तुत करते हैं जो, एक दलित युवती से प्रेम की भावना रखता है। यहाँ, कवि प्रश्न उठाते हैं कि- "निङल एन्ताणु करुत्तुन्नतु?/ कोंप्लक्स एन्नो?/ ओरू पावप्पेट्टवन, ताणवन पोरेन्किल करुम्पन/ केरलत्तिल एडने जीविक्कुन्नु/ एन्नु निड्लक्करियामो?"[19] (आशय : पंक्तियों से कवि यह तथ्य प्रस्तुत करना चाहते हैं कि, केरल में रहनेवाला निम्न गरीब-काला दलित आदमी का जीवन अत्यंत शोचनीय है, जिसे लोग ग्लानि कहते हैं।)

'वड़क्कन यात्रकल' (उत्तर की यात्राएँ) कविता में कवि का मिलन एक निम्न जाति की गरीब लड़की से हुई है। उसके घर के पास एक ब्राह्मण परिवार बसने के कारण उन्हें आज तक बिजली की सुविधा प्राप्त नहीं हुई है। यहाँ कठोर जातिवादी मानसिकता का खुला चित्रण मिलता है। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं- "वीडिनडुत्तोरू मठगुण्डु/ मठमकार अवरुडे परम्पुवषी करण्डेडूक्कान सम्मतिक्कुन्निल्ला।"[20] (आशय : पड़ोस में ब्राह्मण परिवार होने के कारण अपने घर के रास्ते से घर में बिजली लाने में एक अवर्ण परिवार असफल हुआ है। पंक्तियों के माध्यम से कठोर जातीयता दर्शायी गई है।)

संक्षेप में, डॉ.जयप्रकाशश कर्दम और एस.जोसफ की कविताओं में जातिवादी मानसिकता का सशक्तचित्रण हुआ है। 'जाति' के नाम पर जिस प्रकार समाज विभिन्न भागों में बाँट दिया जाता है उसका सटीक प्रतिपादन इन दोनों कवियों की कविताओं में मिलता है। कर्दमजी ने अपने वातावरण की सारी समस्याओं को में व्यक्त किया है। जोसफजी अपने अनुभवों को काव्य का विषय बनाया। जातिवाद में आज थोड़ा-सा बदलाव ज़रूर आया है, फिर भी कहीं आज भी परंपरागत मानसिकता कहीं छिपी रहती

है। कविता के माध्यम से कर्दमजी और जोसफजी दोनों मिलकर सारी कमियों को दूरकर समाज से जातीयता हटाने का श्रम कर रहे हैं।

संदर्भ :

1. मैला आंचल की रचना प्रक्रिया-डॉ.देवेश ठाकुर, पृ.सं. 68
2. वर्णवाद का पहाडा-गूँगा नहीं था मैं-डॉ.जयप्रकाश, कर्दम -पृ.सं.25
3. बेमानी है आज़ादी-वही-पृ.सं.31
4. अस्वीकृति-वही-पृ.सं.36
5. भारत-तिनका तिनका आग-डॉ.जयप्रकाश कर्दम-पृ.सं.20,21
6. बौने-वही-पृ.सं.27
7. भारतीय चिंतन की गाड़ी-वही-पृ.सं.20
8. मैं बनारस जाऊँगा-वही-पृ.सं.20
9. जाति के जंगल में-बस्तियों से बाहर-डॉ.जयप्रकाश कर्दम-पृ.सं.57
10. तमन्ना-वही-पृ.सं.65
11. करुत्ता कुज़ुम काक्कयुम(काला बाच्चा और कौआ)-मीनकारन (मछलीवाला)- एस.जोसफ-पृ.सं.30
12. चंडालन (चण्डाल)-वही-पृ.सं.39
13. वेल्लम (पानी)-ऐडेन्टिटी कार्ड(पहचान पत्र) एस.जोसफ-पृ.सं.24
14. ऐडेन्टिटी कार्ड (पहचान पत्र)-एस.जोसफ-पृ.सं.28
15. करूप्पू (कालापन)-चंद्रनोटोप्पम (चाँद के साथ)-एस.जोसफ-पृ.सं.38
16. निरम (रंग)-मंञा परन्नाल (पीला उड़ा तो)-एस.जोसफ-पृ.सं.15
17. अरम(पौना)-वही-पृ.सं.19
18. करुत्ता कल्लु (काला पत्थर)-एस.जोसफ-पृ.सं.36
19. ग्रुप फोटो (समूह चित्र)-उप्पंडे कूवल वरक्कुन्नू (महोख का पुकार खींचता है)-एस.जोसफ-पृ.सं.61
20. वडक्कन यात्रकाल (उत्तर की यात्राएँ)-ऐडेन्टिटी कार्ड (पहचान पत्र)-एस.जोसफ-पृ.सं.44

पोस्ट डॉक्टरल फेलो , हिन्दी विभाग
केरल विश्वविद्यालय

बधाई

माननीय केंद्र सरकार ने प्रो डॉ एन मोहनन जी को केंद्रीय जनजातीय विश्व विद्यालय, आन्ध्रा प्रदेश के First Court का सदस्य बना दिया। मोहन जी पहले केरल के सरकारी महाविद्यालयों में और बाद में कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्राध्यापक व आचार्य थे। वे CUSAT के सिंडिकेट सदस्य, मानवीकी संकाय के अध्यक्ष, विभाग अध्यक्ष आदि वरिष्ट पदों पर शोभित रहे। संपूर्ण भारत के सारे श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में हिंदी के विषय विशेषज्ञ, चयन समितियों में सदस्य भी थे। 32 साल के लंबी अध्यापन-वेला में मिले हज़ारों विद्यार्थी उनकी संपदा हैं। उनके शोध निदेशन में 33 Ph D पूरी की गई और सैकड़ों M Phil भी निकली।

दलित स्त्रीवाद

डॉ.अनुपमा पी ए

सारांशः दलित वे लोग हैं जो सदियों से आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, राजनीतिक रूप से शोषित है। हिन्दू समाज के जातिगत विचारधाराओं के कारण सदियों से समाज के हर क्षेत्र में उन्हें गरीबी और अपमान का जीवन जीना पड़ा हैं। आज़ादी मिलने के बावजूद भी दलितों को सम्मान और समानता के साथ जीवन जीने का अधिकार नहीं है। ऐसे में भारतीय समाज में दलित स्त्रियों की जीवन की गति और भयानक हैं। पितृसत्ता से पीड़ित होकर ये स्त्रियों को दैनिक आधार पर बहुत सारे संघर्षों का सामना करना पड़ता है। जाति व्यवस्था और वर्ग असमानता के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी आर्थिक एवं शैक्षिक-रूप से वंचित रहने के लिए मज़बूर हो जाते हैं। जाति व्यवस्था स्त्रियों को आतंरिक रूप से 'नीच' घोषित करती है और इसके कारण दलित स्त्रियों के अधिकारों का हनन सबसे अधिक होता है। दलित स्त्रीवाद, दलित महिलाओं के जीवित अनुभवों और विशिष्ट संदर्भों को केन्द्रित करता है, जिन्हें स्त्री या मनुष्य नहीं माना गया है। दलित स्त्रियाँ समाज में असुरक्षित हैं, उसके साथ बलात्कार किया गया, ऊँची जाति द्वारा अपमानित किया गया, इस तरह दोयम दर्जे की नागरिकता देने के कारण उसके अस्तित्व ही संकट में आ गया। दलित स्त्रीवाद इन दलित स्त्रियों को धोखा देनेवाले सामाजिक संगठनों एवं रूढ़ियों के खिलाफ़ आवाज़ उठाते हैं और शिकायत करते हैं। दलित स्त्रीवाद इस बात के लिए प्रमुखता देता है कि, सभी दलित स्त्रियों को अपनी अंतर्निहित शक्तियों को पहचानना और समाज में अपनी खोयी हुई मर्यादा को प्राप्त करना है। केवल मानवता की बात करनेवाले समाज से सवाल करना हैं कि, हम भी मनुष्य जाति में पैदा हुए हैं, हमारा भी अपनी अस्मिता है, अधिकार है । केवल दलित जाति में पैदा होने के कारण कोई इन स्त्रियों का दलन करें ये कहाँ की इंसाफ है? गरीबी, अशिक्षा, अज्ञानता, आजीविका का प्रश्न इन सभी ने उन्हें पीड़ा की स्थिति में धकेल दिया है और उनकी आवाज़ को विस्फोटक बना दिया है । ऐसे में दलित स्त्रीवादी सोच ने स्त्री के पारंपरिक छवि को खारिज कर दिया है और अपने शोषण के खिलाफ़ आवाज़ उठाने के लिए सहायक बनाया है।

बीजक शब्द : दलित, स्वतंत्रता की असमानता, यौन शोषण, अनुसूचित जातियाँ, अछूत, अभोज्य, दमन, अस्पृश्यता, अलगाववादी, मानवाधिकार, वैयक्तिकता।

प्रस्तावनाः दलित शब्द सबसे पहले मराठी समाज सुधारक और क्रांतिकारी ज्योतिराव फुले द्वारा गढ़ा गया था। फुले ने सामूहिक रूप से 'दलित' कहा जो उत्पीड़ित थे और जाति व्यवस्था से बाहर खड़े थे और जिन्हें छुआछूत, अभोज्य आदि का पालन करना पड़ता था। इस जाति व्यवस्था के दौरान दलितों को मनुष्य भी नहीं माना जाता था । कुछ विद्वानों ने ये भी कहा हैं कि, दलितों के उद्धार करने से ही हिन्दू जाति के उत्थान संभव है। "अस्पृश्यता या छुआछूत अगर हिन्दू धर्म में हो तो मुझे कहना पड़ेगा कि, उसमें शैतानियत भरी हुई है, धर्म नहीं। पर मेरा दृढ़ विश्वास हैं कि, हिन्दू धर्म में यह सब कुछ नहीं है। जब तक प्रत्येक हिन्दू अपने चमार, भंगी आदि भाईयों को भी अपने सगे भाई की तरह हिन्दू न समझेंगे,तब तक मैं उन्हें हिन्दू ही नहीं समझूँगा। मनुष्य तिरस्कार और दया इन दो चीज़ों के साथ नहीं रह सकता।"[1] डॉ. भीमराव अंबेडकर के आन्दोलन के बाद यह शब्द हिन्दू समाज व्यवस्था से सबसे निचले पायदान पर स्थित सैंकड़ों वर्षों से अस्पृश्य समझी जानेवाली तमाम जातियों के लिए सामूहिक रूप से प्रयोग में आता है। अब दलित पद अस्पृश्य समझी जानेवाली जातियों की आन्दोलन धर्मिता का परिचायक बन गया है। भारतीय संविधान में इन जातियों को अनुसूचित जाति के नाम से जाना जाता है।

पुरुष प्रधान समाज में स्त्री का पूरा जीवन एवं अस्मिता घुटता रहा। चाहे वह घर के अंदर की बात हो या बाहर की। स्त्री बरसों से दोहरी ज़िन्दगी जीने के लिए विवश हैं । समाज और परिवार दोनों के शोषण से वे काफ़ी प्रताड़ित है । ऐसे में दलित स्त्री का जीवन इससे भी भयावह स्थिति से गुज़रते हुए दिखाई देती है। साथ ही साथ वह परंपरा, रीतिरिवाज़,

नियम एवं मर्यादाओं के घेरे में बंद होकर छटपटाती रहती है। कभी कभी विश्वासों के जंजीरों ने दलित स्त्री को ऐसे बाँधकर रख देते हैं कि, उससे बचाव पाना मुमकिन नहीं है। "जिस तरह हर चमकनी वाली चीज़ सोना नहीं होती, उसी प्रकार पुरानी बात, रस्म, प्राचीन घर्म, रीति रिवाज़ जरूरी नहीं अच्छे हो।"[2] वे इन सभी से उद्धार की बात तो करते हैं लेकिन मार्ग नहीं दिखाते । सदियों से आ रही इस पुरुष मानसिकता के पिंजरे में वह कैद है । भारतीय सामाजिक नियमों ने हमेशा स्त्री को बाँधकर रखने का प्रयास किया। इससे दलित स्त्री का जीवन और नरकमय बन गया। डॉ.अंबेडकर का मत इसमें महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने कहा है कि इसके लिए एक प्रमुख कारण मनुवादी नियम संहिता है। "उसकी दृष्टि में स्त्री के लिए कोई स्थान नहीं है, यह आश्चर्यजनक है कि भारतीय स्त्रियों का पतन का कारण मूलतः मनु है। उसने सामजिक सिद्धांतों को नियमाबद्ध किया है। ऐसे करते हुए उसने न्याय और अन्याय के बारें में कतई नहीं सोचा। यही कारण है कि जिसने भारतीय समाज में नारी की गरिमा को गिराया और दलित स्त्री के प्रति अन्याय तथा दमन के चक्रव्यूह की रचना की।"[3] डॉ.अंबेडकर भारतीय दलित स्त्री को एक सम्मानजनक जीवन प्रदान करने के लिए हमेशा प्रयासरत रहे हैं । अंबेडकर का एक और निबंध 'जाति का उन्मूलन' एक मौलिक कार्य है जो जाति व्यवस्था पर चर्चा करता है। यह दलित परिप्रेक्ष्य को समझने की नींव रखता है। अंबेडकर ने अपने लेखन में जाति के संदर्भ में महिलाओं से संबंधित मुद्दों को भी संबोधित किया।

दलित महिलाएँ उन लोगों के हाशिए पर पड़े समूह का हिस्सा हैं जो आधिकारिक तौर पर भारत में अनुसूचित जाति के रूप में जाने जाते हैं। ये स्त्रियाँ दुनिया में सामाजिक रूप से अलग किए गए सबसे बड़े लोगों का समूह हैं जिनको उच्चतर पर हिंसा का सामना करना पड़ता है। अक्सर हिंसा के शिकार दलित स्त्री और उनके परिवार अपने अधिकारों को नहीं जानते हैं या उन्हें अपने अधिकारों के बारें में सूचित नहीं किया जाता हैं। कभी कभी नीति व्यवस्था भी उनके उपर हो रहे अपराध को रोकने में असमर्थ बन जाता है। दलित अधिकार आन्दोलन ने दलित पुरुषों पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया है और दलित महिलाओं के मुद्दों को अक्सर मुख्यधारा के भारतीय स्त्रीवाद द्वारा नज़रअंदाज़ कर दिया गया है। भारत में स्त्रीवादी शिक्षाविदों ने दलित महिलाओं द्वारा सामना किए जानेवाले जाति संबंधी मुद्दों को भी नज़रअंदाज़ कर दिया है।

1920 के दशक में दलित महिलाएँ जाति विरोधी और अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलनों में सक्रिय थीं। 1930 के दशक में दलित महिलाएँ गैर-ब्राह्मण आन्दोलन में शामिल थीं। इन प्रारंभिक संगठनों ने बाल-विवाह, दहेज और जबरन विधवापन जैसे मुद्दों के खिलाफ़ प्रस्ताव पारित करने में मदद की । 1942 में 25,000 महिलाओं ने नागपुर में अखिल भारतीय दलित वर्ग महिला सम्मेलन में भाग लिया। सम्मेलन की अध्यक्षा सुलोचना बाई डोंगरे ने जन्म नियंत्रण की वकालत की। सम्मेलन के दौरान प्रस्ताव पारित किए गए जिसमें महिलाओं के तलाक के अधिकार की वकालत की गई, बहुविवाह की निंदा की गई, श्रम स्थितियों में सुधार किया गया, राजनीति में महिलाओं की भागीदारी में सुधार किया गया और निचले वर्गों में महिलाओं के लिए बेहतर शिक्षा दी गई । 1970 और 1980 के दशक की शुरुआत में दलित महिलाएँ भी सामाजिक आन्दोलनों में शामिल थीं। 1970 के दशक में दलित महिलाओं के जीवन और अनुभवों की आत्मकथाएँ प्रकाशित होने लगीं। इनमें से कई महिलाएँ बाबा साहेब अंबेडकर से प्रेरित थीं। 1980 और 1990 के दशक के दौरान भारत में मुख्यधारा के स्त्रीवादी विचारधारा ने जाति से जुड़े मुद्दों को पहचानना शुरू किया। यह 70 और 80 के दशक के विभिन्न स्त्रीवादी आन्दोलनों में एक उल्लेखनीय बदलाव था, जो जाति संबंधी मुद्दों को संबोधित नहीं करते थे। दलित महिलाओं की पहली राष्ट्रीय बैठक 1987 में बेंगलूर में हुई। 1990 के दशक में दलित महिलाओं द्वारा महिला महासंघ और अखिल भारतीय दलित महिला मंच के साथ साथ कई राज्य स्तरीय समूह का भी निर्माण किए गए। दलित महिलाओं को भी यह समझना चाहिए था कि, दलित स्त्रियों के लिए इस प्रकार के संगठन विभाजनकारी या अलगाववादी नहीं थे और दलित पुरुषों और गैर दलित महिलाओं के साथ निरंतर गठबंधन की भी आवश्यकता थीं। दलित स्त्रियों को भी लगा कि, उन्हें अपने लिए अपने समूह के लिए बोलने की ज़रूरत है।

1996 में दलित स्त्रीवाद की चर्चा गोपाल गुरु के लेख 'दलित महिलाएँ अलग ढंग से बात करती है' से शुरू हुई। ये लेख दलित महिला राजनीति को स्वंतंत्र और अलग बनाया। तात्कालिक संदर्भ यह था कि, मुख्यधारा के स्त्रीवाद और दलित आन्दोलन ने सिंद्धांत विश्लेषण और कारवाई के स्तर पर दलित महिलाओं के मुद्दों को नज़रअंदाज़ कर दिया। इनका कहना हैं कि, महिलाओं के खिलाफ़ हिंसा में जाति को एक कारक माना जाना चाहिए और दलित-आदिवासी महिलाओं द्वारा सामना किए जानेवाले शारीरिक हमलों में उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि कैसे महत्वपूर्ण हो जाती है। उच्चकुल की स्त्री और निम्नवर्ग की स्त्री के अनुभवों में बड़ा अंतर हैं और इसलिए दलित महिला को ही दलित स्त्रीवाद को आगे बढ़ाना चाहिए। दलित स्त्री मध्यवर्गीय हो अथवा निम्नवर्गीय मज़दूर हो अथवा सामजिक कार्यकर्ता या कॉलेज में अध्यापिका, उसे दलित और स्त्री होने की पीड़ा साथ साथ झेलनी पड़ी है। पूर्वजों के साथ हुए जातिगत शोषण और उत्पीड़न की वेदना की लकीरें सभी में एक समान हैं। अन्याय, गुलामी, दरिद्रता, वंचना ने स्त्री के जीवन को एक-सी भयावहता, दीनता, लाचारी और कुचले जाने की पीड़ा से भर दिया।"[4] दलित महिला शरीर पर जाति के निशान, नारीत्व के लैंगिक विमर्श के निशानों के साथ या उससे भी अधिक अंकित हैं। दलित महिलाएँ सामाजिक और ऐतिहासिक रूप में अपवित्र स्त्री शरीर के रूप में मौजूद हैं और वही अस्तित्व उनके शरीर पर से उनके अधिकार को मिटा देते हैं। इसलिए जाति के नाम पर हिंसा का पहला शिकार दलित स्त्री का शरीर बनता है। "धर्म और जातिगत बलात्कारों के बीच अपने को साधे रखना शायद औरत के लिए सबसे बड़ी अग्निपरीक्षा है।"[5] दलित स्त्रियों को न केवल मुख्यधारा के स्त्रीवाद की प्रमुख आवाज़ों के साथ बल्कि स्वयं दलितवाद की आवाज़ों से भी जूझते हुए बौद्धिक और राजनीतिक रूप से अपनी पहचान को पुनः प्राप्त करने की आवश्यकता है। गुरु के निबंध में दलित पुरुषत्व की जो अवधारणा तैयार की थी उसे समकालीन दलित स्त्रीवादी विचारकों ने दलित विरोधी प्रकृति के कारण खारिज कर दिया है। इस प्रकार गुरु के अध्ययन ने दलित स्त्रीवाद को एक मज़बूत शुरुआत दी।

प्रमुख दलित स्त्रीवादी लेखिका बामा फांस्टीना सुसाइन द्वारा लिखित 'जाति का विनाश' में दलित नारी की विवशता का चित्रण मिलता है। उनकी आत्मकथा 'करुक्कू' और अन्य रचनाएँ दलित महिलाओं के सामने आनेवाली चुनौतियों का पता लगाती है, जो भेदभाव और प्रतिरोध का व्यक्तिगत विवरण प्रदान करती है। उर्मिला पवार द्वारा लिखी गयी संस्मरण 'द वीव ऑफ़ माइ लाइफः ए दलित वुमेन्स मेंमांयेर्स' में एक दलित महिला के रूप में उनके जीवन को दर्शाता है, जो जाति और लिंग के अंतर्संबंध को उजागर करता है। यह उनके व्यक्तिगत संघों और व्यापक सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। इनकी रचनाओं में दलित महिलाओं के सशक्तीकरण और विकास में जातिगत भेदभाव, लैंगिक असमानता, आर्थिक असमानता, शिक्षा और सामाजिक न्याय जैसे विभिन्न परस्पर जुड़े मुद्दों को विषय बनाया हैं। "शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ साथ प्रितुसत्तात्मक मानसिकता में परिवर्तन के बिना स्त्री की पूर्व निर्धारित स्थिति व भूमिका में बदलाव संभव नहीं। इस बदलाव के लिए पुरुष नहीं, स्त्री की मानसिकता को भी बदले जाने की आवश्यकता है क्योंकि स्त्री की मानसिक बुनावट भी पितृसता के अनुसार निर्धारित व नियंत्रित है।"[6] नब्बे के दशक के बाद केरल में स्त्रीवादी आंदोलनों और उनके द्वारा रखे गये विचारों में एक नई जागृति दिखाई देने लगी। इन नेताओं ने दलित महिलाओं के मुद्दे को उठाकर और दलित राजनीति का हिस्सा बनकर ध्यान आकर्षित किया। इस तरह के हस्तक्षेपों के माध्यम से दलित स्त्रीवादी केरल में अपनी राजनीतिक जगह का दावा करते हुए दलित स्त्रीवाद की कट्टर समर्थक बन गयी।

महाराष्ट्र में दलित पैंथर आंदोलन और दलित अधिकारों का समर्थक डॉ.बी.आर अंबेडकर ने पूरे भारत में दलित साहित्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी हैं। फुले और सावित्रीबाई फुले महिला शिक्षा (1848) शुरू करके दलित महिलाओं के लिए शिक्षा के द्वार खोले। बाबा साहेब अंबेडकर ने जाति और महिलाओं के मुद्दों को इस तथ्य से संयोजित करने का प्रयास किया कि, महिलाएँ जाति व्यवस्था का प्रवेश बिंदु है। लेकिन अंबेडकर के बाद 'रिपब्लिकन पार्टी ऑफ़ इंडिया' की राजनीती दलित पैंथेर्स,

नामांतर आंदोलन आदि दलित महिला के मुद्दे को महिलाओं का मुद्दा मानकर नज़र अंदाज़ किया। इन आन्दोलनों के केंद्र में हमेशा दलित पुरुष ही रहे। बलात्कार विरोधी आन्दोलनों, घरेलु हिंसा विरोधी आन्दोलनों से लेकर भारत में स्त्रीवाद आन्दोलन सिंद्धांत और व्यवहार के स्तर पर विकसित हो रहा था। इस आन्दोलन का केंद्र सदैव उच्च जाति की महिलाएँ थीं।

दलित स्त्रीवाद का मुख्य विचार जाति और लिंग के पहचान संकट को जोड़कर एक नया दलित दृष्टिकोण है। मार्च 2006 में दलित महिलाओं के खिलाफ़ हिंसा पर पहला राष्ट्रीय सम्मेलन नई दिल्ली में हुआ। इस सम्मेलन ने 'दिल्ली घोषणा' पारित की जिसमें बताया कि, कैसे दलित महिलाओं को हिंसा, गरीबी और बीमारी की व्यापकता में असमानताओं का सामना करना पड़ा और बताया गया कि, इन असमानताओं के लिए प्रमुख जातियाँ कैसे जिम्मेदार थीं। नवंबर 2006 में, हेग में दलित महिलाओं के मानवाधिकार पर एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया था। हेग सम्मेलन ने न केवल दलित महिलाओं के खिलाफ़ हिंसा को संबोधित किया, बल्कि उनकी अपनी पहचान पर भी चर्चा की और समूह एक जुटता की भावना पैदा की। हेंग सम्मेलन ने न केवल दलित महिलाओं के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए कानूनों के निर्माण का आह्वान किया बल्कि यह भी कहा कि, इन कानूनों को विधिवत् लागू या कार्यान्वित किया जाए। इसके आलावा 2006 में दलित स्त्रीवाद का विचार बनाया गया था।

निष्कर्ष : दलित स्त्रीवाद में महिलाएँ अपनी विशिष्टता एवं जागरूकता को दृढ़ता से व्यक्त करते हैं और अपनी पहचान खोजने का प्रयास करता है। इसमें ये भी दर्शाने का प्रयास किया है कि, एक स्त्री की वैयक्तिकता एक पुरुष के सहयोग के बिना भी पूरी हो सकती है, जो साहित्य पितृसत्ता का विरोध करता है और स्त्रियों को मनुष्य के रूप में चित्रित करता है, भले ही वह किसी पुरुष द्वारा लिखा गया हो, वह स्त्रीवादी होगा क्योंकि सिदधांत रूप में स्त्रीवादी चेतना पुरुषों और महिलाओं दोनों में विकसित हो सकती है, लेकिन यह भी माना जाता है कि, एक स्त्री पुरुष का अनुभव करने में अधिक सक्षम है एक औरत के रूप में। इसलिए महिला लेखन अधिक सटीक, धारदार और सघन हो जाता है। यह व्यापक रूप से माना जाता हैं कि, सभी दलित साहित्यिक रचनाओं की जड़ अंबेडकरवादी विचारों में से हैं। दलित स्त्रीवाद स्त्रियों की जीवन की कठोर वास्तविकताओं और सामाजिक रूप से उत्थान के उनके सराहनीय प्रयासों का भी विश्लेषण करता है। मज़बूत दलित आंदोलनों के साथ साथ दलित स्त्रीवादी साहित्य के माध्यम से उच्च जाति समाज, सरकार और विचारकों पर प्रहार के कारण, आजकल दलित स्त्री समुदाय के सामाजिक जीवन में समानता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण आ रहा है। जाति और लिंग के आधार पर भेदभाव क़ानून द्वारा प्रतिबंधित है। यह उत्पीड़ितों के जीवन-संघर्ष उनके साहित्य के माध्यम से पहचान की तलाश से लेकर सामजिक समानता तक की यात्रा है।

ञसंदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. प्रेमचंद दलित एवं स्त्री विषयक विचार,संपादकः रवींद्र कालिया, जितेन्द्र श्री वास्तव, पृ:37, भारतीय ज्ञानपीठ, 2012.
2. नागफनी, रूपनारायण सोनकर, पृ:91, शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.
3. The rise and fall of Hindu woman: Dr.Ambedkar, Page-26
4. दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरात, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ :15
5. हंस, सं. डॉ.राजेंद्र यादव, अंक-1994
6. हिन्दी की दलित आत्मकथाएँ:एक मूल्यांकन, पुनीता जैन, प्रकाशकः सामायिक बुक्स, 2017.
7. हंस, सं. डॉ.राजेंद्र यादव, अंक-2002
8. तेलुगु में दलित महिला लेखन, ई .पी डब्ल्यू , 25 अप्रैल 1998)

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
माऊँट कार्मेल कॉलेज (स्वायत्त),
बेंगलुरु-560052.

आत्मकथा

देवयानम्

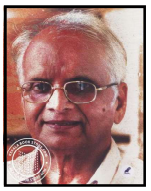

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

तेरहवाँ देवपद-विश्वविद्यालय में

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

केरल विश्वविद्यालय के हर एक विभाग के अध्यापकों के साथ मेरा अच्छा खासा संबंध था। उनमें विशेष उल्लेखनीय थे - डॉ पी बी रॉव, डॉ पी ए कुरुप, डॉ एस वेंकिट सुब्रह्मण्य अय्यर, डॉ वी ए सुब्रह्मण्यम, डॉ टी के रवींद्र, डॉ वी के सुकुमारन नायर आदि। संस्कृत विभाग के श्री एन पी उण्णि ने मेरे साथ पीएच डी की थी जो बाद में श्री शंकरा संस्कृत विश्वविद्यालय के वी सी के पद पर प्रतिष्ठित हो गए थे। उसी प्रकार मलयालम विभाग के श्री के रामचंद्रन नायर और श्री पी वी वेलायुधन पिल्लै दोनों ने भी हमारे साथ डॉ नारायण पिल्लै के निरीक्षण में पीएच डी की थी। मलयालम विभाग के मेरे सह कर्मचारी थे श्री के रामचंद्रन नायर, श्री पुतुश्शेरी रामचंद्रन, श्री पी वी वेलायुधन पिल्लै, टी भास्करन, श्री एन आर गोपिनाथ पिल्लै, श्री डी बेंचमीन, श्री एन मुकुंद, श्री पी रामन, श्री एन सी हरिदास इत्यादि। मेरे निरीक्षण में बारह शोधार्थियों ने खोज-प्रबंध समर्पित किए थे और उन्हें अपनी पीएच डी की उपाधि मिली थी। मेरे पच्चीस विद्यार्थियों ने एम फिल किए थे। हर साल अपने स्नातकोत्तर क्लास में पंद्रह विद्यार्थियों को मैं पढ़ाया करता था।

जब मैं केरल विश्वविद्यालय के मलयालम विभाग के अध्यक्ष था तब भाषा-साहित्य की पढ़ाई तथा विभाग की उन्नति एवं प्रगति के लिए कुछ कर सका। यह मेरे लिए बड़े गर्व और संतोष की बात है। यूनिवर्सिटी ग्रान्स कमीशन का (UGC) अनुदान प्राप्त कर पुस्तकालय के लिए नए मकान का निर्माण किया गया और बहुमूल्य पुस्तकों को इकट्ठा कर उसकी गरिमा और महिमा बढ़ा दी गई। साहित्य संबंधी अनेक गोष्ठियाँ हुईं तथा उनमें चर्चित प्रबंधों को समाहृत कर अनेक पुस्तकें भी प्रकाशित की गईं जैसे "तकषि़ और मलयालम उपन्यास" "उल्लूर के प्रबंध" आदि। अपने विभाग की भलाई एवं प्रगति के लिए जो कुछ कर सका उससे मैं अवश्य संतुष्ट हूँ; परंतु चाहते हुए भी जो न कर सका उसके बारे में सोच कर मेरे मन में निराशा एवं दुख भी है। हाँ; यह बात दिल खोल कर कहना चाहता हूँ कि अंग्रेज़ी इंस्टिट्यूट के अध्यापक डॉ अय्यप्पा पणिक्कर की कर्मठता और निपुणता मेरे लिए बड़ी प्रेरणादायक थीं।

द्राविड़ विश्वविद्यालय के प्रथम वी सी थे डॉ वी ऐ सुब्रह्मण्यम जो पहले लिंग्विस्टिक्स विभाग के अध्यक्ष थे और बाद में कषक्कूट्टम के पासवाले अंतर्देशीय द्राविड़ भाषा शास्त्र की संस्था के प्रथम अध्यक्ष भी थे। उस संस्था में एक सीनियर रिसेर्च फेल्लो (Research fellow) के रूप में मैंने काम किया था तथा अपने प्रोजेक्ट को पुस्तक रूप में प्रकाशित भी किया। 1995 को हेरमन गुण्डर्ट के नाम पर जर्मनी में मलयालम भाषा का एक सम्मेलन हुआ था। केरल विश्वविद्यालय के मलयालम विभाग के अध्यक्ष होने के नाते मैंने भी उस में भाग लिया था। प्रोफसर गुप्तन नायर, प्रोफसर ओ एन वी कुरुप्प, चित्रकार श्री कृष्णकुमार आदि भाषा और साहित्य के महत्वपूर्ण व्यक्तित्वों ने इस सम्मेलन की शोभा बढ़ा दी थी। श्री गुण्डर्ट का पौत्र श्री आलबर्ट फ्रेंस इस सम्मेलन का मुख्य आयोजक था। इस समय जर्मनी के टूबिंगगन विश्वविद्यालय जाने का भी मुझे अवसर मिला था। वहाँ की हस्तलिपि ग्रंथशाला के प्रथम क्युरेटर थे (संग्रहाध्यक्ष) श्री गणपति शास्त्री। उनके डॉक्टरेट का प्रमाण पत्र देखने का सौभाग्य मुझे मिला था। वे संस्कृत के महाकवि एवं नाटककार श्री भास के नाटकों के समुद्धारक थे। इन दिनों मेरे सहायक था श्री हरियानु हर्षिता नामक जर्मन युवक। उसने यहाँ आकर ओट्टन तुल्लल नामक कला सीखी थी। बियाट्रीस अलाक्सीस नामक मेरी एक विद्यार्थी

की बंधु है श्रीमती सूसी। जर्मनी में उनका आतिथ्य भी मैं ने स्वीकार किया था। उसी प्रकार जर्मनी में डॉ अन्नाक्कुट्टी और उनके पति डॉ फिनडीस ने भी अपने घर में मेरा स्वागत सत्कार किया था। डॉ अन्नाक्कुट्टी मुंबई विश्वविद्यालय में जर्मन भाषा पढ़ाती थी। केरल विश्वविद्यालय की अपनी नौकरी से निवृत्त हो जाने पर जर्मनी जाकर काम करने का एक सुझाव भी उन्होंने मेरे सम्मुख रखा और मैंने यह स्वीकार भी किया था। परंतु दुबारा मेरा वहाँ जाना संभव न हो सका। जो भी हो; दो हफ्ते तक जर्मनी में रह कर मुझे अत्यंत अपूर्व अनुभव हुए; बहुत सारे श्रेष्ठ व्यक्तित्वों से मेरा मिलन हुआ था। कुल मिलाकर मैं यह कहना चाहूँगा कि "ऑफ वीडेर सेहन" अर्थात् फिर मिलेंगे हम।

तिरुवनंतपुरम में 'कविता समिति' नामक किसी संगठन की स्थापना हुई थी जिसका मैं सिक्रेटरी था। मलयालम भाषा और साहित्य मंडल के आठ प्रमुख व्यक्तित्व इसके संचालक थे। वे थे - श्री एन कृष्णपिल्लै, प्रो गुप्तन नायर, श्री के अय्यप्पा पणिक्कर, श्री एम सुधाकरन नायर, श्री जी शंकर पिल्लै, श्री के एस नारायण पिल्लै, श्री के रामचंद्रन नायर और मैं। मलयालम भाषा के श्रेष्ठ काव्यों के आस्वादन की एक नई पद्धति इस समिति के द्वारा रूपायित की गई। नगर के सुप्रसिद्ध प्रेक्षागृह में याने वी जे टी हॉल में काव्योत्सव का विशेष प्रबंध किया गया था। निश्चित दिन के पूर्वाह्न किसी प्रतिष्ठित कवि की रचनाओं पर चर्चाएँ होती थीं; भाषण होता था; निबंधों का अवतरण होता था जो बाद में प्रकाशित भी होते थे। इस प्रकार महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर, महाकवि वल्लत्तोल, महाकवि कुमारनाशान, महाकवि उल्लूर, महाकवि जी शंकर कुरुप्पु, कवि चंगंपुष़ा, कवयित्री श्रीमती बालामणियम्मा, कवि वैलोप्पिल्ली श्रीधर मेनोन आदि महान रचयिताओं की रचनाओं के साथ ही संस्कृत के महाकवि कालिदास की कविता और लोकगीतों को उपजीव्य बनाकर नृत्य-संगीत आदि कलात्मक प्रस्तुतियाँ भी होती थीं। अनगिनत दर्शकों एवं उन्नत श्रेणी के आस्वादकों से सभागृह भरपूर होता था। स्वर्गीय श्री के सी पिल्लै, श्री जी कुमार पिल्लै, श्री के वेलायुधन नायर, श्रीमती सुगतकुमारी आदि मलयालम साहित्य क्षेत्र के आदरणीय व्यक्तित्वों ने इस काव्योत्सव के लिए बहुत बड़ी सहायता दी थी। (क्रमशः)

कविता

थमती नहीं नदी

सुबोध श्रीवास्तव

कभी-
किसी के रोकने से
नहीं रुकती
नदी
न ही किसी पड़ाव रे
रुकावट से भयभीत हो
रुख बदलती है।
नदी चंचल होती है
लेकिन
गांभीर्य भी नहीं खोती या कभी
वात्सल्य उड़ेलती है
हमेशा
बड़े दुलार से
दोनों किनारों पर।
मैं, पुल होकर
साक्षी हूँ उसकी निरंतरता का
इसीलिए
भाता है मुझे
उसको अपलक
निहारते रहना।
नदी -
जो दोनों किनारों को
दुलराती तो है
मगर
तनिक भी जन्मने नहीं देती
मोह / शायद
इसीलिए कभी धमती नहीं
वह
बहती जाती है-बहती जाती है..!

कानपुर (उप्र)-208 001

आत्मकथा

ज़िंदगी : एक लोलक

मूल : श्रीकुमारन तंपी

अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार

मूषिकवंश के शासन के कारण एषिमला का नाम 'एलिमला' (चूहा पहाड़) नाम से भी जाना गया। तेईसवीं सदी में केरल आनेवाले मारकोपाळो के (वेनीस, इटली) लिखे हुए यात्रा विवरण में कोलत्तुनाडु को एली राज्यं (चूहा देश) कहा गया था। साहित्य, दृश्य कलाओं एवं अन्य ललित कलाओं को कोलत्तिरी के शासक उदारपूर्वक प्रोत्साहन देनेवाले रहे थे। 1464 से 1476 तक कोलत्तुनाडु का शासन करने वाले उदयवर्मन कोलत्तिरि के निर्देशानुसार ही महाकवि चेरुश्शेरी नंपूतिरी ने 'कृष्णगाथा' की रचना की थी। 1766 में मैसूर के शासन करनेवाले हैदराली ने कोलत्तुनाडु पर चढ़ाई की। वळपट्टनम्, माडाई नामक स्थानों में हुए युद्ध में कोलत्तिरि की पराजय हुई। कोलत्तिरी का चिरक्कल कोविलकं (राजमहल) हैदराली ने हडप लिया। राजपरिवार के विभिन्न लोगों ने तिरुवितांकूर की ओर पलायन किया। तिरुवितांकूर पहुँचनेवाले कोलत्तिरी के रिश्तेदारों को तत्कालीन तिरुवितांकूर के शासक कार्तिका तिरुनाल रामवर्मा महाराजा ने अभय दिया। उनको आरन्मुळा, मावेलिक्करा, मरियपल्लि, एण्णय्क्काडु, नेडुंब्रम जैसे प्रदेशों में रहने का प्रबंध करवा दिया। लेकिन बाद में अंग्रेज़ों ने हैदराली का पुत्र टिप्पु को पराजित करके मैसूर एवं कोलत्तुनाडु समेत मलबार प्रदेश को भी मद्रास से मिला दिया। कोलत्तिरि ने अंग्रेज़ी आधिपत्य को मान लिया और सीमित अधिकार में कोलत्तुनाडु के शासन को जारी रखा। मेरी माँ की सात या आठ पीढ़ियों के पूर्व की दादी माँ अपनी पाँचवीं वर्ष की आयु में चाचाजी के साथ चिरक्कल राज महल से तिरुवितांकूर भाग गयी थीं। पर यह उपर्युक्त लोगों के बच जाने के काल में नहीं था। इतिहास, मिथक और यादों से मिश्रित वह कहानी इस प्रकार है। पीढ़ियों के मुँह से सुनी कथा....! यह हम विश्वास करनेवाली कथा है।

शासन करनेवाले कोलत्तिरि के निकट के उत्तराधिकारों के लिए नाम हैं 'तेक्केळंकूर'। दूसरा उत्तराधिकारी 'वडक्केळंकूर' भी कहा जाता था। सत्ता में रहनेवाला कोलत्तिरि के छोटा भाई हो तो, उनमें से उम्र में जो बड़े हैं, उनमें से दो व्यक्तियों को ही यह स्थान मिलेगा। अगर छोटा भाई नहीं है तो उत्तराधिकार भतीजों को मिलेगा। शक्तिशाली 'मरुमक्कत्तायं' (परंपरागत रूप से संपत्ति का अधिकार माँ के बड़े भाई द्वारा भतीजे को मिलने की प्रथा) मूषिकवंश में कायम रहता था।

जब यह घटना घटी तब शासन करनेवाले कोलत्तिरी की पत्नी अत्यंत सुंदर थी। अगले कोलत्तिरी बनने की ताक में बैठे तेक्केळंकूर को बड़े भाई की पत्नी से असीम मोह उत्पन्न होने लगा। कामवासन से पीड़ित होकर उन्होंने अनेक बार बडे भाई की पत्नी से शारीरिक संभंध रखने की कोशिश की। वह स्त्री बहुत परेशान हुई। यह बात अगर पति कोलत्तिरी जान लेंगे तो बड़े भाई और छोटे भाई शत्रु बन

जायेंगे। तेक्केळंकूर के लोगों के भी कुछ अधिकार हैं। उसके कहने पर अनुसरण करनेवाले योद्धा भी हैं। शायद बड़े और छोटे भाई आपस में लड़कर एक की मौत भी हो सकती थी। इसलिए इस दुविधा के बारे में पति से बताने के लिए वह तैयार नहीं हुई। दूसरा कोई उपाय न मिलने पर तंपुराट्टी (राणी) ने इस रहस्य को अपने भाइयों से बता दिया। "तेक्केळंकूर को उपदेश देकर मना करना चाहिए।" राणी ने भाईयों से कहा। युद्ध कला और अन्य आयोधन रीतियों में अति समर्थ उन दोनों भाईयों ने तेक्केळंकूर को उपदेश दिया पर वह माननेवाला नहीं, यह समझकर धमक्की भी दी। जो भी हो कुछ दिनों के लिए पति के छोटे भाई के बुरे आचरणों से रानी बच गई। उसी समय तेक्केळंकूर के मन में ईर्ष्या बढ़ती गई और जेठानी के भाइयों को शत्रु के रूप में घोषणा भी की। दोनों भाईयों में से बडा भाई एक दीर्घयात्रा के लिए जब गए थे उस समय कोलत्तिरी की मृत्यु हुई। तेक्केळंकूर नए कोलत्तिरी के रूप में अधिकार संभाले। बड़े भाई की पत्नी के दोनों भाइयों में से छोटे को उसने वायु संचार रहित तहखाने में बंद कर दिया। भूख से एवं दम घुटकर वह मर गया।

यात्रा के बाद लौट आए बडे भाई अंगरक्षकों से बात जान ली। उसी दिन रात में ही कोलत्तिरी (तेक्केळंकूर) जिस कमरे में सो रहे थे उस कमरे में घुस कर उन्होंने उसे मार डाला। सिर्फ पाँच साल की उम्र की भतीजी को साथ लेकर तिरुवितांकूर की ओर पलायन किया। सहायक के रूप में एक नायर युवक को भी संघ में ले लिया। उस ज़माने में कोलत्तिरी एवं रिश्तेदारों के सभी अंगरक्षक पट्टाणी मुस्लिम थे। मालिक के प्रति वफादार। मालिक के लिए अपनी जान तक छोडने के लिए न हिचकनेवाले थे ये पट्टाणी लोग। शेष रिश्तेदारों को पट्टाणियों की सहायता से ही लक्ष्य स्थान पर भेजा था। पकडे जाने की स्थिति आने पर उन दसों पट्टाणी लोगों ने खुदकुशी कर ली, ऐसा माँ आवेग के साथ कहा करती थीं। मूल देश छोड़ते समय साथ जो संपत्ति हाथ में ले सकी, ले ली थी। मुख्य रूप से गहने, सोने के बर्तन, नवरत्न, वैडूर्य आदि। पाँच साल के बच्चे की परवरिश करने और हाथों में जो खजाना है उसके संबंध में ध्यान रखने के लिए ही नायर युवक को साथ लिया था।

चाचाजी के साथ तिरुवितांकूर पहुँचनेवाली पाँच साल की लड़की की उत्तराधिकारी हैं मेरे सहित पुन्नूर तंपी लोग। पीढ़ियों के पहले जीवित मेरी बड़ी दादी उनकी पाँचवीं उम्र में तिरुवितांकूर में कब पहुँची थी, यह स्पष्ट रूप से नहीं जानता। किसी के लिए भी व्यक्त सबूत नहीं है। इस इतिहास का माँ से अधिक अच्छी तरह मेरे चाचाओं ने अध्ययन किया था। लेकिन उनको देखने तक का भाग्य मुझे नहीं मिला। विषवैद्य एवं पुन्नूर परिवार की मुखिया बने कुमारन तंपी नामक बडे चाचा को देखने का भाग्य ही मुझे मिला था। उनके सामने जाने के लिए भी मुझे भय था। चीखते हुए ही वे वात्सल्य भी प्रकट किया करते थे। माँ की सबसे बड़ी बहन कार्त्यायनिक्कुट्टि तंकच्ची के सबसे बड़ा पुत्र डॉ त्रिविक्रमन तंपी को छोटी माँ रूपी मेरी माँ से दस वर्ष की उम्र अधिक थी। उम्र में बड़ी होने के कारण छोटी माँ को वे नाम से ही पुकारते थे। माँ उनको 'अक्कन' कहकर पुकारती थीं। इस बडे कोच्चाट्टन ने ही उपर्युक्त इतिहास मुझे बता दिया था। हत्या करके देश भाग जानेवाले होने के कारण ही व्यक्त सबूतों को सुरक्षित न रखा गया था। चिऱक्कल परिवार से रिश्ता पूर्ण रूप से विच्छेद करने को, मेरी पूर्व पीढ़ियों में जीनेवाले लोग मजबूर हो गए थे।

(क्रमशः)

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. वैष्णव भक्तों में 'विशाख सखी' का अवतार किसे माना जाता है?
2. सूरदास के जीवन पर आधृत अमृतलाल नागर के उपन्यास का नाम क्या है?
3. 'सम्मोहन' किसका प्रसिद्ध उपन्यास है?
4. हिंदी की पहली आत्मकथा लेखिका का नाम क्या है?
5. 'प्रतापरुद्र यशोभूषण' किसका ग्रंथ है?
6. लहना सिंह किस कहानी का पात्र है?
7. भारत-भारती किसका काव्य है?
8. 'केशव को कवि हृदय नहीं मिला था' - किसका कथन है?
9. किसने पुष्य को 'भाखा की जड़' कहा है?
10. सहजयानियों की भाषा क्या है?
11. 'लाल पसीना' किसका उपन्यास है?
12. 'हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' किसका आलोचनात्मक ग्रंथ है?
13. 'प्रेमचंद : विरासत का सवाल' किसका आलोचनात्मक ग्रंथ है?
14. 'व्योमकेश दरवेश' किसकी जीवनी है?
15. 'चुका भी हूँ मैं नहीं' किसकी कविता है?
16. 'एक सही कविता पहले एक सार्थक वक्तव्य होती है' - किसकी पंक्ति है?
17. श्री राधाचरण गोस्वामी ने किसको 'पीयुषवर्षा मेघ' की उपमा दी है?
18. 'त्रिधारा' किसका काव्य है?
19. 'नयी कविता' नाम किसका दिया हुआ है?
20. 'प्रयोगवाद दृष्टिकोण का अनुसंधान है' किसका कथन है?

उत्तर

1. हरिराम व्यास
2. खंजन नयन
3. सुदर्शन चोपड़ा
4. जानकी देवी बजाज
5. विद्यानाथ
6. उसने कहा था
7. मैथिलीशरण गुप्त
8. रामचंद्र शुक्ल
9. शिवसिंग सेंगर
10. संध्य भाषा
11. अभिमन्यु अनत
12. नंददुलारे वाजपेयी
13. शिवकुमार मिश्र
14. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
15. शमशेर बहादुर सिंह
16. धूमिल
17. बिहारी
18. सुभद्राकुमारी चौहान
19. अज्ञेय
20. केशरी कुमार

आचार्य (बी.एड) महाविद्यालय में हुए क्रिसमस महोत्सव के विभिन्न दृश्य

डॉ. षैलजा रवीन्द्रन द्वारा रचित 'सुब्रह्मण्य भारती' पुस्तक के विमोचन का दृश्य

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-01-2025
Date of posting : 20th of Every month

KERALJYOTI

JANUARY 2025

Vol. No. 61, Issue No.10
Regn. No. KL/TV(S) 381/2025-2027
Price Rs. 40/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

भारतीय साहित्य प्रतिष्ठान द्वारा प्रदत्त 'डॉ.रामचन्द्रदेव हिंदी सेवी सम्मान' ख्यातिप्राप्त कवि श्री प्रभावर्मा वरिष्ठ हिंदी सेवी श्रीमती इंद्राणि अम्मा को प्रदान कर रहे हैं।

आचार्य (बी.एड) महाविद्यालय की छात्राएँ योगाभ्यास कर रही हैं।

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवननंतपुरम-695014 में मुद्रित, प्रो.डी.तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014
Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair & Dr.Renjith Ravisailam